अनुराग
बाल पत्रिका

त्रैमासिक

अप्रैल-जून 2005

दस रुपये
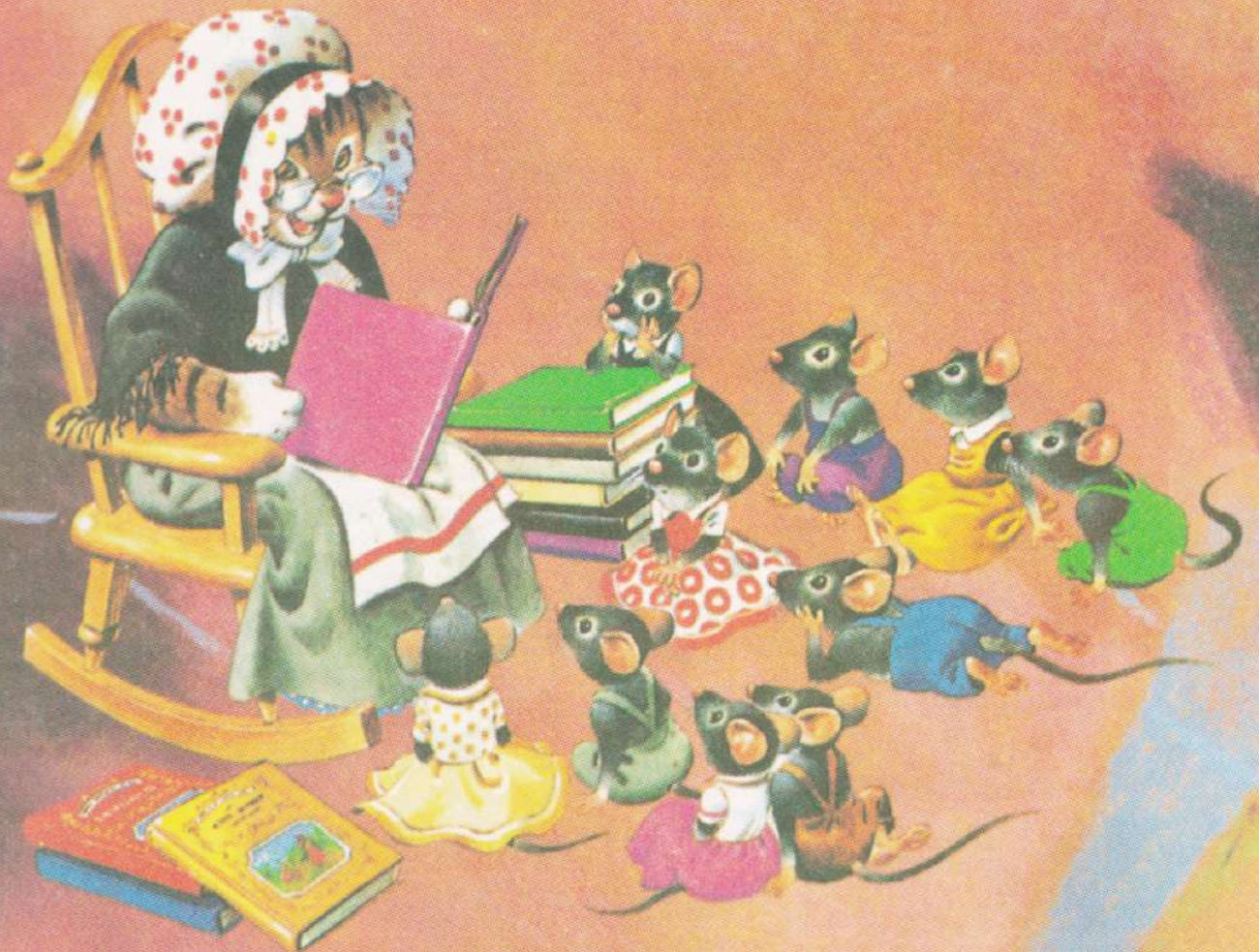
अप्रैल-मई-जून की कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

8 अप्रैल (1857)
1887 के स्वाधीनता संग्राम के प्रथम विद्रोही मंगल पाण्डे को ब्रिटिश हुकूमत द्वारा फाँसी

8 अप्रैल (1929)
'बहरों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत होती है', इस उद्घोष के साथ भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली की सेंट्रल असेम्बली में बम फेंका

9 अप्रैल (1893)
महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का जन्मदिवस

13 अप्रैल (1893)
जालिम रौलट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जालियावाला बाग में शान्तिपूर्ण सभा कर रहे लोगों पर ब्रिटिश फौज के जनरल डायर ने अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलवाईं जिससे सैकड़ों स्त्री-पुरुष व बच्चे मारे गये। इस दिन को जगह- जगह दमन विरोधी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

14 अप्रैल (1963)
महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की पुण्यतिथि

18 अप्रैल
चटगाँव विद्रोह । बंगाल (अब बंगलादेश) के चटगाँव शहर में मास्टर सूर्यसेन के नेतृत्व में तरुण क्रान्तिकारियों के दल ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया और शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया।

22 अप्रैल (1870)
रूसी क्रान्ति के महान नेता व्लादिमीर इलिच लेनिन का जन्मदिवस

1 मई
अन्तरराष्ट्रीय मजदूर दिवस : 8 घण्टे काम के दिन की माँग को लेकर 1886 में शिकागो में शहीद हुए मजदूरों की याद में इस दिन दुनिया भर के श्रमिक अपने हक के लिए लड़ने का संकल्प लेते हैं।

5 मई (1818)
कम्युनिस्ट विचारधारा के संस्थापक महान चिन्तक और क्रान्तिकारी कार्ल मार्क्स का जन्मदिवस

5 मई (1911)
चटगाँव विद्रोह की नायिका–प्रीतिलता वाडेदार का जन्मदिवस

8 मई
गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्मदिवस

17 मई
महान गणितज्ञ और चिंतक बट्रेण्ड रसेल का जन्मदिवस

19 मई
वियतनाम के महान क्रान्तिकारी नेता हो चि मिन्ह का जन्मदिवस

20 मई (1929)
भगतसिंह के वरिष्ठ साथी, हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के नेता भगवतीचरण वोहरा बम का परीक्षण करते समय शहीद हो गये

25 मई
महान बंगला कवि काजी नजरुल इस्लाम का जन्मदिवस

11 जून (1857)
महान देशभक्त क्रान्तिकारी, काकोरी केस के शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का जन्मदिवस
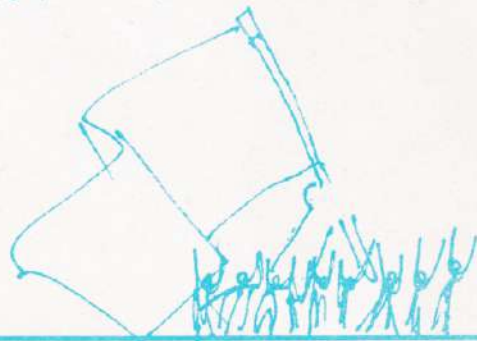
अनुराग
बाल पत्रिका

त्रैमासिक, वर्ष 10, अंक 2
अप्रैल-जून 2005

सम्पादक
कमला पाण्डेय

सह सम्पादक
अभिनव सिन्हा

सज्जा
रामबाबू

स्वत्वाधिकारी कमला पाण्डेय के लिए यशकरण लाल द्वारा डी-68, निराला नगर, लखनऊ से प्रकाशित तथा मुद्रक बाबूराव बोरकर द्वारा शान्ति प्रेस, नवागाँव (पश्चिम), लखनऊ से मुद्रित।

सम्पादकीय कार्यालय
डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226020
फोन : (0522) 2786782

इस अंक का मूल्य : 10 रुपए
वार्षिक सदस्यता : 48 रुपए
(डाक व्यय सहित)

इस अंक में

संवाद 4

कहानी
उल्टा दरख़्त 5
माली 17
माशा की मनहूस तकिया 29

कविता
मोटू राम 22
मेरी गुड़िया 22
बुलबुल 23
नया साल 23
दस मे दस 23

जानकारी
बाघ 32
कस्तूरी मृग 32

बाल कम्यून के कलम से
वान्का कहानी की समीक्षा 33
डर 34
फ्रिज जी की भूल 35
झगड़ा 35

नई कलम से
तितली 36
गिनती की कविता 36
भूत 39
आग में मेरी पहली छलाँग 39
कविता / मँहगाई और सरकार 40
आजाद तोता 40
नन्हीं पेन्सिल ने बनाया 41
बाल कूची 43

संवाद

प्रिय बच्चो,

तुम्हारी इस नानी के जमाने में गरमी की छुट्टियों की योजनाएँ हमलोग दो महीने पहले से ही बनाना शुरू कर देते थे। तब ज्यादातर बच्चों का पूरा परिवार नानी के घर जाया करता था। ट्रेन में बैठने, बागीचे में आम तोड़ने और खाने, भरी दुपहरियों में मामा-मामी मौसी के बच्चों के साथ धमाचौकड़ी, रात में आँगन में बिछी चारपाई पर बैठकर, सोकर नानी से ढेर सारी कहानियाँ सुनना, इस सबकी कल्पना से हमलोग खुश हो जाते थे और एक-एक दिन गिनते थे कि कब छुट्टियाँ आयेंगी और कब हमलोग नानी के घर जायेंगे। तब हमलोगों की छुट्टियाँ पूरे दो महीने (मई-जून) की हुआ करती थी और स्कूल से कोई काम नहीं मिलता था। पढ़ने के लिए भी कोई नहीं टोकता था। बस हँसना, गाना, खेलना, कूदना, बदमाशियाँ करना....... अब ऐसा नहीं होता। अब तो बच्चों की छुट्टियाँ भी कम हो गयी हैं और इन छुट्टियों में स्कूल से काफी होमवर्क भी मिल जाता है। यानी स्कूल से भले ही छुट्टी हो, पढ़ाई से छुट्टी नहीं है। उसके बाद टेलीविजन (जो हमलोगों के जमाने में नहीं था) के कार्यक्रम। तब ये बताओ तुम दोस्तों के बीच कब जाते हो। किससे अपने मन की बातें करते हो। किसके साथ गप्पे लड़ाते, बदमाशियाँ करते, लड़ते-झगड़ते, ठहाका लगाते, फुटबाल कबड्डी, कैरम व अन्ताक्षरी खेलते हो।

इन गरमी की छुट्टियों को किस तरह बिताने की योजना तुम लोगों ने बनाई है? क्या-क्या करने वाले हो? क्या-क्या किया और जो सोचा था, उसमें क्या नहीं कर पाये। अपने अनुभव अपनी इस नानी को लिख कर भेजना, जिससे तुम्हारे साथ थोड़ी देर के लिए मैं भी बच्ची बन जाऊँ।

-शुभकामनाओं और प्यार के साथ

तुम्हारी नानी
कमला पाण्डेय

पोस्ट बाक्स

आदरणीया पाण्डेय जी

'अनुराग' का संयुक्ताक मिला! प्रसन्नता हुई! आपने मेरी रचना को स्थान दिया अहोभाग्य! पिछले नौ वर्षों से पत्रिका प्रकाशित हो रही और मैं अभी तक अपरिचित रहा, इसे मैं अपना दुर्भाग्य मानता हूँ। रोचक, ज्ञानवर्धक कहानियों और कविताओं के साथ रंग-बिरंगे चित्र बालमन को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सक्षम हैं। 'नन्ही कलम' और 'नन्हीं कूंची' को प्रोत्साहन देकर आपने पत्रिका की लोक प्रियता को दूना बढ़ा दिया। मुद्रण साफ सुथरा, आकर्षणयुक्त मुख्य पृष्ठ के साथ पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु कृपया हार्दिक शुभ कामनायें स्वीकार करें।
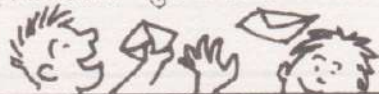
पत्रिका के अगले अंक में प्रकाशनार्थ दो बाल रचनायें प्रेषित हैं। आशा है आपका स्नेह प्राप्त होगा। कृपया 'अनुराग ट्रस्ट' के बारे में भी परिचित कराने की कृपा करें। आभारी रहूँगा। सादर

-अनिल द्विवेदी 'तपन', कन्नौज

आदरणीय नानी, नमस्ते

आपकी यह पत्रिका बच्चों के विकास में सहायक है व आपका इरादा भी दृढ़ है तभी यह पत्रिका बगैर विज्ञापन के अनवरत निकल रही है। बच्चों के विकास के लिए ढेरों काम भी कर रही है। सच! आप इस पत्रिका के द्वारा बाल लेखन को प्रोत्साहन देती हैं। संयुक्तांक तो एक उपलब्धि लगी। स्वस्थ समाज के निर्माण में संलग्न आप दृढ़ संकल्प को मेरा प्रणाम।

-खेमकरण 'सोमन'

कहानी

उल्टा दरख्त

(कृश्नचंदर की लम्बी दिलचस्प कहानी 'उल्टा दरख्त' की दूसरी किश्त)

पिछले अंक में तुमने पढ़ा : बाप के मरने पर यूसुफ की माँ ने जब यूसुफ से बादशाह की फौज में भरती होने को कहा तो बेवकूफ मुँहफट यूसुफ ने कहा कि बादशाह खुद मेरे पास आये, फौज की जरूरत बादशाह को है मुझे नहीं। बादशाह के कानों तक यह बात पहुँची तो बादशाह यूसुफ के घर आया, वहाँ भी युसुफ ने निडरता के साथ बात की और बादशाह ने उसकी जमीन जब्त कर ली। उसके बगीचे में एक लड़की दिखी उसने घमण्ड के साथ कहा मैं शहजादी हूँ। यूसुफ ने अकड़कर कहा मैं मोची का बेटा हूँ, मेरे दाँत बहुत मजबूत हैं। शाहजादी के हुक्म से बगीचा और कुँआ भी जब्त कर लिए गए। माँ ने देखा कि भोजन जुटाने के लिए उसका बेटा जिस प्यारी गाय को बेचने गया था, उसके बदले में उसे तीन रुपये मिले, लेकिन तीन रुपये कम बताने पर खोजे ने तीन दाने दिये और कहा कि इन तीन दानों को जो एक साथ बोएगा, उसकी जमीन में दूसरे दिन एक जादू का पेड़ निकलेगा, जो आसमान तक पहुँच जायेगा, और तुम उस दरख्त पर चढ़कर आसमान तक जा सकते हो। लेकिन आखिर में उसके पास एक ही दाना बचा। जिसे उसने नरम भुरभुरी जमीन में बो दिया। दूसरे दिन यूसुफ और उसकी माँ ने झाँका दरख्त जमीन के अन्दर ही चला गया था–वह उल्टी ओर फैलता जा रहा था। युसुफ जमीन की दरार में से होता हुआ घोर अँधेरे में तरह-तरह की मुश्किलें झेलता हुआ बढ़ता गया–तीन दिन और तीन रातों तक वह दरख्त के ऊपर चढ़ता गया। उसी समय झटके से उसे किसी ने पंजे में दबोच लिया और एक बुलंद दरवाजे पर उतारा, जहाँ लिखा था 'काले देव का शहर' देव ने युसुफ को देखा और कहा–तू न काला है न सफेद–चल भाग। परन्तु यूसुफ ने रास्ते में देखा कि काले लोग ऐश की जिन्दगी गुजारते हैं और सफेद लोगों से गुलामों सा बर्ताव किया जाता है। यूसुफ को हैरान देख कर काले देव ने कहा– तुम्हारी जमीन पर सफेद लोग काले लोगों पर जुल्म करते हैं, हुकूमत करते हैं, तो यूसुफ ने कहा–काले और सफेद दोनों ही की उँगली काटने से खून का रंग एक समान निकलता है, इसलिए दोनों एक दूसरे के फायदे में शरीक हों, यूसुफ ने देखा काला देव उससे सहमत हुआ, उसे उठा कर दरख्त की शाख पर बैठा दिया–आसमान का अँधेरा छँट गया था, लाखों जुगनू चमकते चले गए, लेकिन दरख्त खत्म नहीं हो रहा था, वरन् वहाँ एक ऐसा बच्चा था जिसका सिर्फ अंगूठा बचा था। उसने यूसुफ को बताया कि मैं एक ऐसा हिन्दुस्तानी फिल्म डायरेक्टर हूँ जिसने पिछले पच्चीस वर्षों में बच्चों के लिए कोई ठीक फिल्म नहीं बनाई। पर तुम्हें यह सजा किसने दी। उसने कहा–हमें क्या मालूम?

अब आगे पढ़ें–

यूसुफ डाल पर आगे बढ़ गया। डाल की आखिरी टहनी का आखिरी पत्ता एक बहुत बड़े कैमरे को छू रहा था। यहाँ मद्धिम-मद्धिम रोशनी भी थी। यूसुफ ने कैमरे का बटन दबाया। कैमरे का शीशा, यानी दरवाजा खुलकर अलग हो गया। थोड़ी दूर तक वह अँधेरे में चलता रहा। फिर यकायक कहीं पर एक खटका सा हुआ और चारों तरफ रोशनी ही रोशनी हो गई और उसने देखा कि वह एक बहुत बड़े शहर के दरवाजे पर खड़ा है।

मशीनों का शहर

जहाँ तक नजर जाती थी, यूसुफ को जगह-जगह ऊँची-ऊँची चिमनियों से धुआँ निकलता दिखाई दे रहा था। बड़ी-बड़ी ऊँची इमारतें थीं। शहर बड़ा खूबसूरत और साफ-सुथरा दिखाई दे रहा था। यूसुफ उसे देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने सोचा, चलो कुछ रोज इसी शहर की सैर करेंगे। यह सोच कर उसने दरवाजे के अन्दर कदम रखा। उसके कानों में एक आवाज आई, "जेब संभाल कर चलिए, जेबकतरों से होशियार रहिए।"

यूसुफ ने इधर-उधर देखा। मगर उसे कहीं कोई आदमी दिखाई नहीं दिया जो यह आवाज दे सकता था। यूसुफ दरवाजे से निकल कर आगे सड़क

पर चला गया। यकायक फिर एक आवाज आई, "फुटपाथ पर चलिए सरकार!"

यूसुफ घबरा कर फुटपाथ पर चलने लगा। सड़क पर मोटरें गुजरने लगीं। बड़ी खूबसूरत मोटरें थीं। आगे चौक पर जाकर ये सब मोटरें रुक गईं। एक लाल रंग की बत्ती के सामने ये मोटरें रुकी पड़ीं थी। यूसुफ ने सबसे आगे की मोटर में झाँक कर देखा तो हैरत से उसका मुँह खुला का खुला रह गया क्योंकि मोटर में कोई आदमी नहीं था। ज्योंही यूसुफ ने मोटर में झाँका, मोटर के अंदर से आवाज आई, "आईए, तशरीफ लाईए।" फिर मोटर का दरवाजा आप ही खुल गया।

यूसुफ स्प्रिंगदार गद्दों पर डट कर बैठ गया। मोटर में से फिर आवाज आई, "कहाँ चलिएगा हुजूर?"

यूसुफ ने कहा, "बाजार ले चलो।"

इतने में हरी बत्ती जली। मोटर खुद बखुद रवाना हो गई। अब मोटर बाजारों में से गुजर रही थी। बाजार में हर दुकान खुली पड़ी थी और हजारों तरह की चीजें दुकानों पर नजर आ रही थी। खूबसूरत कपड़े, तरह-तरह के फल और केक-बिस्कुट और रंग-रंग की महकती हुई मिठाइयाँ। हर चीज सजी हुई थी। मगर ताज्जुब की बात यह थी कि सारे बाजार में कहीं कोई आदमी नजर न आता था। एक पेट्रोल पम्प के पास जाकर मोटर खुद बखुद रुक गई। आवाज आई, "माफ कीजिए, पेट्रोल खत्म हो गया है। मैं जरा पेट्रोल ले लूँ। आप जब तक सामने की दुकान देखिए।"

दुकान देखने से पहले यूसुफ पेट्रोल पम्प देखने लगा। उसने देखा कि पेट्रोल का नल खुद बखुद उठा और मोटर में पेट्रोल डालने लगा और जब पेट्रोल डाल चुका तो फिर खुद बखुद अपनी जगह पर आकर रुक गया। यूसुफ घूम कर दुकान की तरफ मुड़ गया। यहाँ बड़ी अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ थालों में सजी हुई थी। मगर न कोई दुकानदार था और न कोई ग्राहक था। यूसुफ ने दो गुलाबजामुन उठाए। दो रसगुल्ले खाए, एक इमरती खाई और रुमाल से मुँह साफ किया और वापस चलने को ही था कि किसी ने कहा, "जनाब, आठ आने तो देते जाएँ!" (याद रहे, **यह कहानी पचास साल पहलें १९५४ में लिखी गई है और इसमें दर्ज चीजों के दाम उस वक्त के हैं। यही वजह है कि तुम्हें ये मिठाइयाँ इतनी सस्ती लग रही हैं।**)

यूसुफ हैरान होकर पीछे मुड़ा। मगर दुकान पर कोई आदमी न था। यूसुफ को हैरत हुई। मगर उसने अपनी हैरत दबाते हुए कहा, "मेरी जेब में तो इस वक्त एक पैसा भी नहीं है।"

आवाज आई, "कोई बात नहीं। आपके हिसाब में लिख लिया जाएगा।"

इतने में एक खटका हुआ और यूसुफ ने देखा कि दुकान पर जहाँ दुकानदार बैठता है, वहाँ एक मशीन बैठी है। यूसुफ के जवाब देते ही उस मशीन में एक बत्ती जली। खटाक-खटाक की आवाज दो दफा आई और मशीन से एक लोहे का कमानीदार हाथ निकला। उस हाथ में एक चीनी मिटटी की प्लेट रखी थी और उस प्लेट पर कागज के एक पुर्जे पर एक बिल छपा था जिसपर आठ आने की रकम दर्ज थी।

आवाज आई, "इसे अपने जेब में रख लीजिए। शहर से वापस जाते हुए वक्त आपसे हिसाब कर लिया जाएगा।"

यूसुफ ने हैरान हो कर पर्चा लिया और मोटर में बैठ गया।

मोटर ने कहा, "कहाँ चलूँ?"

यूसुफ ने कहा, "थक गया हूँ। किसी ऐसी जगह ले चलो जहाँ आराम कर सकूँ।"

मोटर एक आलीशान होटल के दरवाजे पर रुक गई। खुद-बखुद मोटर का पट खुला। खुद-बखुद होटल का दरवाजा खुला। यूसुफ अन्दर चला गया। अब थोड़ी-थोड़ी बात उसकी समझ में आ रही थी। उसने इधर-उधर देखा। एक तरफ एक बड़ी सी मशीन पड़ी थी जो उसके आते ही रंगा-रंग रोशनी से चमकने लगी। यूसुफ उस मशीन के पास चला गया और बोला, "मुझे एक कमरा चाहिए।"
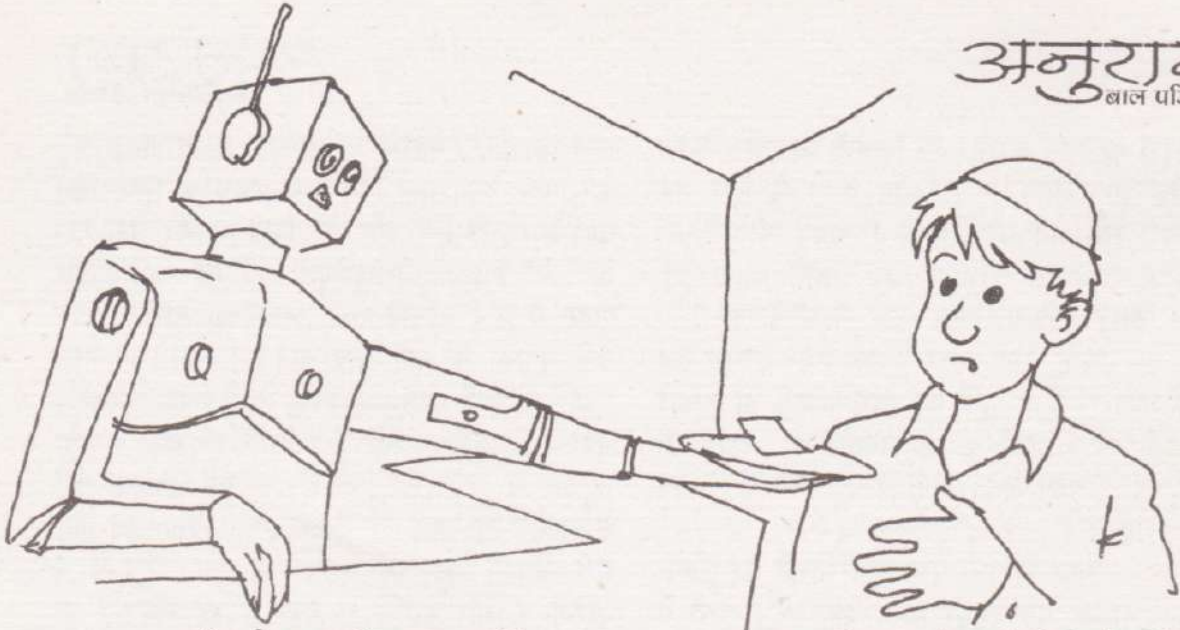
मशीन ने कहा, "तुम्हारा नाम?"

"यूसुफ।"

"कहाँ से आए हो?"

"बादशाह की नगरी से।"

"कैसे आए हो?"

"जादू के दरख्त पर चढ़ के।"

"यहाँ कितने दिन रहोगे?"

"जितने दिन किसी इन्सान की सूरत नजर ना आएगी।"

मशीन हँसी। यूसुफ भी हँसा। मशीन ने कहा, "यह सामने का कमरा है, उसको लिफ्ट कहते हैं। उसके अन्दर जा के खड़े हो जाओ। यह लिफ्ट तुमको तुम्हारे कमरे के सामने पहुँचा देगी।"

यूसुफ ने ऐसा ही किया। लिफ्ट ने उसको एक बहुत बड़े कमरे के सामने उतार दिया। यूसुफ जब दरवाजे के करीब पहुँचा तो दरवाजा आप ही आप खुल गया। अन्दर जा के क्या देखता है कि एक कमरा है, बहुत बड़ा। वह सारा का सारा तरह-तरह की मशीनों से भरा पड़ा है। एक कोने में एक कुर्सी रखी है और उस पर एक छोटा सा लड़का बैठा है। उसकी आँखों में गैर-मामूली चमक और कशिश (आकर्षण) है। और उस लड़के के हाथों पर उँगलियाँ नहीं हैं। सिर्फ अंगूठे बाकी रह गए हैं।

यूसुफ ने कहा, "अस्सलाम अलैकुम!"

लड़के ने कहा, "हैलो!"

यूसुफ ने पूछा, "तुम्हारी उँगलियाँ कहाँ हैं?"

लड़के ने कहा, "उँगलियों की जरूरत ही क्या है। यहाँ सब काम बटन दबाने से हो जाता है। उसके लिए अंगूठा काफी है।"

यूसुफ ने पूछा, "तुम्हारे इस शहर के लोग कहाँ रहते हैं? मैंने बाजारों में, सड़कों पर सब जगह घूम के देखा है, सिवाय तुम्हारे किसी आदमी की सूरत नजर नहीं आई। इस शहर के लोग कहाँ रहते हैं?"

लड़के ने कहा, "इस शहर में आदमी नहीं रहते। सिर्फ मशीनें हैं और बटन।"

"आदमी कहाँ गए?" यूसुफ ने पूछा।

"वे सब मर गए या मार दिए गए।" लड़के ने दुखी हो कर कहा।

"तुम्हारे माँ-बाप कहाँ हैं?" यूसुफ ने पूछा।

"वे भी मर गए। मेरे वालिद इस शहर के मालिक थे। उनका नाम तुमने सुना होगा। मोटू राम दरला!"

"हाँ! हाँ! सुना तो है। हमारे राजा के बहुत गहरे दोस्त थे।"

"उन्हें रुपया कमाने का बहुत शौक था। इसके लिए उन्होंने इस शहर में जगह-जगह कारखाने खोले थे जिनमें हजारों मजदूर काम करते थे। मेरे पिताजी को नई-नई मशीने मँगाने का बहुत शौक था। जब भी कोई मशीन आती, वह एक के बजाय एक सौ

मजदूरों का काम करती। मेरे पिताजी कारखाने में वह मशीन लगा लेते। उसपर काम करने के लिए एक मजदूर रख लेते और बाकी निनानवे मजदूरों को निकाल देते। इस तरह ज्यूँ-ज्यूँ मशीनें बढ़ती गईं, लोग बेकार होते गए और भूख से मरने लगे।"

"क्यों ऐसा किया तुम्हारे पिताजी ने? जब एक मशीन सौ मजदूरों का काम करती तो तुम्हारे पिताजी सौ मजदूरों को ही रखते, मगर हरेक से थोड़ा-थोड़ा काम लेते। यानी बारह घण्टे की बजाय बारह मिनट।"

"मगर पिताजी ऐसा नहीं सोचते थे। उनका कहना था कि मेरे मजदूर बारह घण्टे काम करते थे तो अब भी उनको बारह घण्टे ही काम करना चाहिए, चाहे मजदूर एक रहे या एक सौ।"

"मगर यह क्यों? मशीन आदमी के लिए है, आदमी मशीन के लिए नहीं है। अच्छी और तेज काम करने वाली मशीन का फायदा आदमी को ही मिलना चाहिए ताकि उसकी मेहनत कम हो। समझ में तो यही आता है।"

"मगर मेरे पिताजी की समझ में नहीं आता था। वह मजदूर कम करने पर तैयार थे, मगर मजदूर के काम का वक्त कम करने को तैयार ना थे। कहते थे, इससे मजदूर बिगड़ जाएँगे। मशीन बिगड़ जाती है तो उसका पुर्जा नया डाल देने से उसे ठीक कर ले सकते हैं। लेकिन मजदूर बिगड़ जाए तो फिर उसे कौन संभालेगा?"

"अजीब उलटी खोपड़ी के मालिक थे तुम्हारे पिताजी!"

"सुनो तो", लड़के ने कहा, "होते-होते यह हुआ कि जब सब काम मशीनें करने लगीं और सब तरफ बेकारी और भूख बढ़ने लगी तो लोग मरने लगे। मगर पिताजी बहुत खुश थे क्योंकि उनका मुनाफा बढ़ रहा था। फिर एक दिन वह आया कि कहत (अकाल) से बाजार के बाजार खाली हो गए। बाजारों में बहुत सामान था, मगर लोगों के पास खरीदने को पैसा नहीं था। इसलिए थोड़े ही दिनों में हजारों की तादाद में लोग भूख से मर गए। बहुत से लोग बगावत में मारे गए। जो बचे थे, वे शहर छोड़ कर भाग गए। एक दिन इस शहर में सिर्फ तीन आदमी रह गए–मैं और मेरे पिताजी और मेरी माँ। फिर मेरे पिताजी ने खुदकुशी कर ली क्योंकि इस शहर में कोई आदमी नहीं रहता था, इसलिए अब उन्हें मुनाफा भी नहीं होता था। तुम जानते हो नफा मशीनों से नहीं होता, आदमियों से होता है। जब कोई आदमी ही नहीं रहा तो पिताजी किससे नफा कमाते! आखिर में बेचारे मेरे पिताजी इस गम को सह नहीं सके और खुदकुशी कर के मर गए। तीन साल हुए, मेरी माँ भी चल बसी। तबसे मैं इस शहर में मैं अकेला हूँ और मशीनों के बटन दबाता रहता हूँ या फुर्सत में सिनेमा देखता हूँ। मगर कोई तस्वीर (फिल्म) भी ऐसी नहीं मिलती जो बच्चों के लिए हो। इसलिए मैंने तंग आ कर सब फिल्म डाइरेक्टरों को उल्लू बना कर दरख्त पर रख दिया। तुमने रास्ते में उनको देखा होगा?"

"हाँ! मगर तुमने यह नहीं बताया कि तुम्हारी उँगलियाँ किसने काट डालीं?"

"मेरे पिताजी ने। बात यह थी कि मुझे हाथ से काम करने का बड़ा शौक था और वह कहते थे कि काम करने की क्या जरूरत है। काम मशीनों को करने दो। आदमी को सिर्फ बटन दबाना चाहिए। इसलिए उन्होंने मेरी उँगलियाँ काट डालीं।" लड़के ने बड़े दुख से अपने हाथों की तरफ देखा।

यूसुफ ने कहा, "तुम मेरे साथ चलो। इस शहर को छोड़ दो। यह शहर नहीं है, मुनाफाखोरों का कब्रिस्तान है।"

लड़के ने कहा, "तुम्हारे साथ जाकर क्या करूँगा?"

यूसुफ ने कहा, "दरख्त पर चढ़ेंगे। नई दुनिया देखेंगे, तरह-तरह के लोग देखने में आएंगे।"

लड़के ने कहा, "लेकिन मैं दरख्त पर कैसे चढूँगा? मैं तो सिर्फ बटन दबा सकता हूँ।"

यूसुफ ने कहा, "वह मैं सिखा दूँगा। तुम चलो तो। क्या नाम है तुम्हारा?"

"शून्य शून्य एक (००१)!"

"यह कोई नाम है क्या? मुझे तो टेलीफोन का नम्बर मालूम होता है।"

"हमारे शहर में आदमियों के नाम नहीं होते। नम्बर होते हैं। मेरा नम्बर शून्य शून्य एक है।"

यूसुफ ने कहा, "मैं आज से तुम्हें मोहन कहूँगा।"

"मोहन?" शून्य शून्य एक ने दोहराते हुए कहा, "अच्छा नाम मालूम होता है – मोहन! घण्टी की तरह बजता है।"

जब मोहन यूसुफ के साथ चलने लगा तो उसने शहर पर एक आखिरी नजर डाली और अफसोस से कहने लगा,

"मगर यह इतना बड़ा शहर! ये खूबसूरत सड़कें, कारखाने, कारें, मकान, घर? गली-कूचे, बाजार, दौलत के अम्बार! इनका क्या होगा?"

"आदमी के बगैर उनकी कोई कीमत नहीं है। इन तमाम चीजों की कीमत आदमी से होती है। कपड़े आदमियों के पहनने के लिए होते हैं। मिठाइयाँ बच्चों के खाने के लिए होती हैं। सड़कें राहगीरों के गुजरने के लिए होती हैं। लेकिन अगर कारखाने में मजदूरों के हाथ काम ना करते हों और घरों में औरतों की हँसी ना सुनाई देती हो और गली-कूचों में बच्चों के शोर मचाने की आवाज ना आती हो– क्या तुमने किसी गली-कूचे में शोर मचाया है?"

"शोर मचाना किसे कहते हैं?" मोहन ने बड़ी उदास निगाहों से यूसुफ की तरफ देख कर कहा।

यूसुफ ने अपनी बात अधूरी रहने दी। उसने मोहन को बाजू से घसीट कर कहा, "जल्दी से यहाँ से भाग चलो, वरना यह खामोश शहर तुम्हें खा जाएगा। अभी दस साल की ही उम्र में तुम्हारे चेहरे पर झुर्रियाँ देख रहा हूँ।"

यूसुफ मोहन को बाजू से पकड़ कर कैमरे की आँख से निकल आया। बाहर दरख्त की टहनी पर फिल्म डाइरेक्टर बड़ी संजीदगी से एक-दूसरे से बहस कर रहे थे। एक कह रहा था, "मैं तुम से बड़ा डाइरेक्टर हूँ।"

दूसरा कह रहा था, "नहीं मैं तुमसे बड़ा हूँ।"

पहले डाइरेक्टर ने कहा, "इसका सबूत?"

दूसरे डाइरेक्टर ने कहा, "इसका सबूत यह है कि मैं इस दरख्त की टहनी पर उलटा लटक सकता हूँ।" यह कह कर उसने अपने पर फड़फड़ाए और दरख्त की टहनी से चमगादड़ की तरह उलटा लटक गया।

पहले डाइरेक्टर ने कह, "मैंने तुम्हारी फिल्में देख कर ही मालूम कर लिया था कि वे फिल्में भी तुमने कैमरे से उलटा लटक कर बनाई हैं।"

यूसुफ ने मोहन से कहा, "इन लोगों की बहस में पड़ना हम बच्चों के लिए ठीक नहीं है। आओ, हम लोग आगे चलें।"

दरख्त की टहनी पर आहिस्ता-आहिस्ता

चलते हुए वे फिर दरख्त के तने पर आ पहुँचे। मोहन ने यह होशियारी की कि वह एक टार्च ले आया। उस टार्च की रोशनी में दोनों दोस्त दरख्त के ऊपर चढ़ते गए। आगे मोहन और पीछे-पीछे यूसुफ ताकि मोहन अगर कभी दरख्त से गिरने लगे तो पीछे से यूसुफ उसे सम्भाल ले। मोहन अपने अंगूठे की मदद से बड़ी मेहनत और मुश्किल से दरख्त पर चढ़ता जाता और यूसुफ उसे टार्च दिखाता जाता था। थोड़ी दूर अँधेरे में चढ़ने के बाद धीमी-धीमी रोशनी नजर आने लगी। ऐसी रोशनी जैसी चाँदनी रात में होती है। आगे जाकर उन्होंने देखा कि दरख्त की एक ऊँची डाली पर एक पिंजड़ा लटका हुआ है और उसमें चाँद बन्द है।

इस पिंजड़े के पास एक अजीब शक्ल का देव बैठा है जिसकी रंगत चाँदी की सी है। इस देव की आँखें चाँदी की थीं और जब वह बात करता था तो उसके मुँह से लफ्जों के बजाय रुपये निकलते थे और ये रुपये खनखनाते हुए, अजीब सी आवाज पैदा करते हुए नीचे एक बड़ी सी तश्तरी में गिरते जाते थे। इस तश्तरी के बीच में एक बड़ा सा सूराख था जिसमें एक नली लगी थी जिसका एक सिरा तश्तरी में और दूसरा सिरा उस देव की नाफ (नाभि) में लगा हुआ था। चुनांचे रुपये देव के होंटों से गिरते, आवाज पैदा करते हुए तश्तरी में खनखनाते और सूराख से गायब हो कर नली से होते हुए देव की नाफ के अन्दर चले जाते। यूसुफ ने उन गिरते हुए रुपयों को जब हाथ से पकड़ना चाहा तो उसने "सी" करके जल्दी से उन रुपयों को छोड़ दिया क्योंकि रुपये आग की तरह तप रहे थे। यूसुफ अपने हाथ की तरफ देखने लगा। उसका हाथ जल गया था, हथेली पर जगह-जगह छाले पड़ गए थे।

मोहन ने पूछा, "अब तुम दरख्त पर कैसे चढ़ोगे?"

देव ने हँस कर कहा, "आगे जाने की क्या जरूरत है? हमारी दुनिया में रहो।"

मोहन ने पूछा, "तुम्हारी दुनिया कौन सी है?"

देव ने अपने करीब ही रखे एक बहुत बड़े ढोल को उठा कर अपने गले में लटका लिया। ये ढोल बड़ा अजीबो गरीब था। वह बड़ी अजीब चीज का बना हुआ था। ढोल के जो पर्दे होते हैं, वे दो रंग के थे। एक तरफ की खाल काली थी और दूसरी तरफ की सफेद।

यूसुफ ने पूछा, "ऐ बड़े देव, अगर जान की अमान पाऊँ तो कुछ अर्ज करूँ।"

देव ने बड़े घमण्ड से कहा, "बोल, क्या कहता है? तेरी जान बख्श दी हमने। बाअदब, बामुलाहिजा, होशियार! बोल क्या बकता है?"

यूसुफ ने कहा, "आपका यह ढोल लकड़ी की बजाय हड्डियों का क्यों बना है?"

देव ने कह, "लकड़ी बहुत महँगी होती है। इसलिए मैंने ढोल को इन्सान की हड्डियों से तैयार किया है और उसपर चमड़ा भी इन्सान का मढ़ा हुआ है क्योंकि दूसरे जानवरों का चमड़ा बहुत महँगा आता है।"

मोहन ने पूछा, "मगर एक खोल काला है और दूसरा सफेद है। इसका क्या मतलब है?"

देव ने कहा, "एक काले आदमी का चमड़ा है। दूसरा सफेद आदमी का चमड़ा है। मगर मैं दोनों को एक ही छड़ी से पीटता हूँ।"

फिर चाँदी के देव ने ढोल को पीटते हुए चिल्लाना शुरू किया, "डम-डम! डम-डम! आ जाओ। जादू की दुनिया देखो। इन्सान का अम्बार देखो। लाओ सिर्फ चार आने। डम-डम! डम-डम!"

यूसुफ ने कहा, "लेकिन हमारे पास तो एक पैसा भी नहीं है।"

मोहन ने कहा, "नहीं, मेरी जब में आठ आने हैं।"

मोहन ने देव को आठ आने दिए और जादू की दुनिया के अन्दर दाखिल हो गया। अन्दर जा कर यूसुफ और मोहन ने देखा कि एक बड़ा लकोदक सहरा (विशाल रेगिस्तान) है। जमीन बंजर है। जगह-जगह रेत के टीले हैं। सहरा के बीच में एक लम्बा सा रास्ता है जिसपर इन्सान की हड्डियाँ बिखरी

पड़ी हैं और इस रास्ते पर लाखों इन्सान रोते-कलपते हुए, एक-दूसरे को ढकेलते हुए आगे चल रहे हैं। इन दोनों लड़कों ने देखा कि हर इन्सान के पाँवों में सोने की जंजीर पड़ी हुई है और यह जंजीर अगले आदमी की जंजीर से बँधी हुई है। ये लोग बहुत कमजोर नजर आते थे। उनसे बड़ी मुश्किल से चला जाता था और बहुत से लोग तो ऐसे थे कि उनके जिस्म की पसलियाँ तक अलग-अलग नजर आती थी।

यूसुफ ने पूछा, "तुम लोग कौन हो?"

एक आदमी ने जवाब दिया, "हम लोग सोने के देव के गुलाम हैं। उसने हम को कैद कर रखा है।"

यूसुफ ने कहा, "सोने का देव कहाँ है?"

"वह तुम को आगे मिलेगा।"

"आगे कहाँ?"

"जहाँ यह रास्ता खत्म होता है।"

जहाँ पर रास्ता खत्म होता था, वहाँ पर वाकई सोने का देव बैठा था। उसकी शक्ल-सूरत चाँदी के देव से मिलती-जुलती थी। फर्क सिर्फ इतना था कि जब वह बात करता था तो उसके मुँह से रुपयों की बजाय अशरफियाँ गिरती थीं और चाँदी की तश्तरी की बजाय सोने की तश्तरी में गिर कर देव की नाफ में गायब हो जाती थी।

देव ने लड़कों से कहा, "तुम्हारा टिकट कहाँ है?"

लड़कों ने डरते-डरते अपने टिकट दिखाए। सोने के देव ने कहा, "अच्छा है, तुम्हारे पास टिकट हैं। वरना मैं तुम्हें भी अपना गुलाम बना लेता। अच्छा! अब मेरा तमाशा देखो।"

इतना कह कर देव ने अपने सामने खिंचे एक पर्दे को हटाया। और दोनों बच्चों ने देखा कि सामने लकोदक सहरा में एक बहुत बड़ी दीवार खड़ी है और यह दीवार सारी की सारी सोने की है। सोने की इतनी बड़ी दीवार उन्होंने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं देखी थी। मगर यह देख कर उनको और भी अचम्भा हुआ कि उस दीवार की बुनियादों में छोटे-छोटे सुराख बने हुए हैं और छोट-छोटे देवजादे उन सोने की जंजीरों को खींच-खींच कर उन सुराखों में डाल रहे हैं जो इन्सानों के पैरों में बँधी हुई थीं।

"यह क्या हो रहा है?" मोहन ने पूछा।

देव ने कहा, "यह मैं सोने की दीवार उगा रहा हूँ।"

"सोने की दीवार भी उगती है!" मोहन ने हैरान हो कर पूछा।

देव ने कहा, "जितनी देर तुम्हें आए हुए हुई है, उतनी देर में यह दीवार दो फुट ऊँची हो गई है। देखो, गौर से देखो। तुम्हें दीवार उगती हुई मालूम होगी।"

बच्चों ने गौर से देखा। वाकई दीवार बढ़ती हुई मालूम होती थी। यूसुफ ने देवजादों की तरफ देखते हुए कहा, "मगर ये जो देवजादे हैं...ये वहाँ सोने की दीवार के पास क्या कर रहे हैं?"

"उसकी बुनियादों को सींच रहे हैं।"

यकायक देव ने ताली बजा कर कहा, "खुल जा सिम सिम!" और देवजादों ने अपनी सोने की जंजीरों को सूराख में डाल दिया। और मोहन और यूसुफ ने देखा कि वे सोने की जंजीरें नहीं थीं, सोने की नलियाँ थीं जिनमें से इन्सानी खून बह कर सोने की दीवार के सूराखों में जा रहा था।
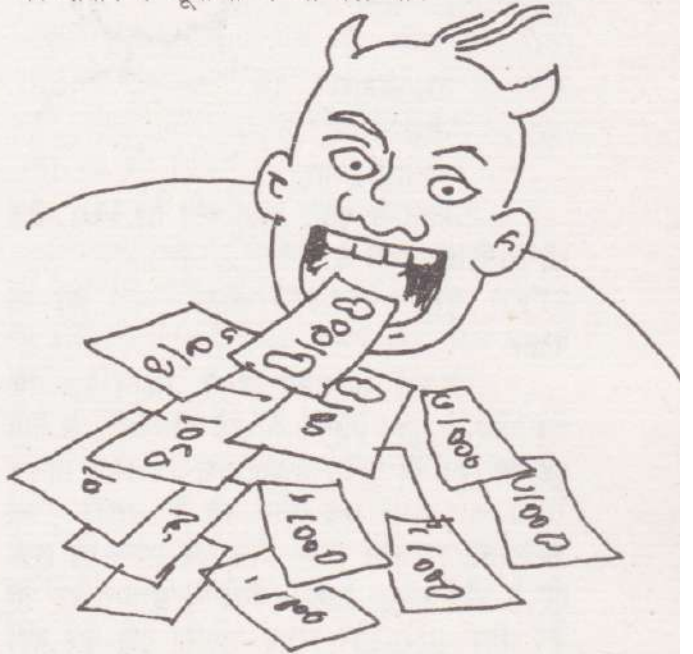
यूसुफ ने घबरा कर कहा, "मगर यह तो इन्सानी खून है।"

देव ने हँसते हुए कहा, "मगर यह भी तो देखो कि दीवार कितनी ऊँची हो गई है!"

यूसुफ और मोहन वहाँ से सिर पर पाँव रख कर भागे। भागते-भागते वे जादू की दुनिया के बिल्कुल दूसरे हिस्से में चले आए। यहाँ पर एक चबूतरे के इर्द-गिर्द बहुत से लोग जमा थे। सैकड़ों-हजारों की तादाद में होंगे। चबूतरे की तरफ देख-देख के बोली दे रहे थे।

"दस हजार!"

"तीस हजार!"

"चालीस हजार!"

मोहन ने पूछा, "क्या बात है? किस चीज की बोली लग रही है?"

यूसुफ ने कहा, "आओ, आगे बढ़ के देखें।"

चबूतरे के करीब जाकर उन्होंने देखा कि एक लोहे के सुतून (खम्भे) से लोहे की जंजीरों से बँधी हुई एक बड़ी ही खूबसूरत शहजादी है। उसके नाज़ुक रेशमी बाल कमर तक लटक रहे हैं। उसकी कमल की डण्डी की तरह लम्बी गर्दन एक तरफ को झुकी हुई है और आँसू उसकी आँखों से बराबर बह रहे थे। मगर यूसुफ और मोहन को यह देख कर बड़ी हैरत हुई कि उसकी आँखों से जो आँसू गिर रहे हैं, वे दरअसल आँसू नहीं हैं, पारदर्शी मोतियों के दाने हैं जो उसकी आँखों से निकल कर जमीन पर गिरते जाते हैं, जहाँ एक आदमी किरमिजी रंग के गलीचे पर बैठा इत्मिनान से उन्हें चुनता जाता है और बोलता जाता है, "बोलो, बोलो! दाम लगाओ। यह कोई मामूली शहजादी नहीं है। रोती है तो उसकी आँखों से मोती गिरते है। देखते जाओ और दाम लगाओ।"

"एक लाख!" एक आदमी ने घबरा कर कहा।

"दो लाख!"

"दस लाख!" "चालीस लाख!!"

बोली बढ़ रही थी।

मोती जमीन पर गिर रहे थे।

मोहन ने कहा, "तुम उसकी क्या बोली दोगे?"

यूसुफ ने कहा, "मैं तो एक पैसा भी ना दूँगा। मुझे तो रोती हुई शहजादी जरा भी अच्छी नहीं लगती। मुझे तो हँसती हुई शहजादी चाहिए।"

मोहन ने कहा, "मगर सोचो तो यह मोतियों की रानी है!"

यूसुफ ने कहा, "फिर क्या हुआ? यह भी तो सोचो मोती हासिल करने के लिए उसे हर वक्त रुलाना पड़ेगा। उसे तरह-तरह की तकलीफें देनी पड़ेंगी, तब कहीं ये मोती मिलेंगे। मैं तो जुल्म के लिए तैयार नहीं हूँ।"

मोहन ने कहा, "तुम ठीक कहते हो। फिर इस बेचारी को किसी न किसी तरह बचाना चाहिए।"

यूसुफ ने कहा, "शहजादी तुम्हें अच्छी लगती है?"

मोहन ने कहा, "मेरे पास कहानियों की एक किताब थी। मेरे बाप ने वह किताब छीन कर फाड़ डाली। उसमें इस शहजादी की तस्वीर थी।"

यूसुफ कुछ देर चुप रहा। फिर उसने चिल्ला कर कहा, "ऐ शहजादी! अब जरा हँस कर तो दिखाओ।"

मोती चुनने वाला आदमी जोर से चिल्लाया, "खबरदार जो हँसी। जान से मार डालूँगा।"

यह कह कर उसने जोर से शहजादी की पीठ पर चाबुक लगाया। यूसुफ ने फिर जोर से कहा, "अगर बिकना नहीं चाहती हो तो हँसो। जोर से हँसो। तकलीफ भी हो, दर्द भी हो, तो भी हँसो। फिर देखो क्या होता है!"

शहजादी ने हँसना शुरू कर दिया। यकायक उसकी आँखों से मोती गिरना बन्द हो गया और होंठों से फूल झड़ने लगे। मगर ये मामूली फूल थे, जैसे गुलाब, जूही और नरगिस के फूल। खरीदारों को उनमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। नीलाम करने वाला धड़ाधड़ चाबुक लगाता गया। फिर भी शहजादी हँसती गई। खरीदार घबरा कर भाग गए क्योंकि वे मोतियों के खरीदार थे, फूलों के खरीदार नहीं थे।

थोड़ी देर में चारों तरफ उल्लू बोलने लगे। फिर नीलाम करने वाला भी चाबुक मारते-मारते खुद बेहोश हो कर गिर गया क्योंकि वह फूलों की खुशबू बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उसने उस दिन तक न तो फूल देखे थे और न ही फूलों की खुशबू सूंघी थी। इस लिए वह बेचारा बेहोश हो कर वहीं फूलों के अम्बार पर गिर गया। मोहन और यूसुफ ने आगे बढ़ कर शहजादी की जंजीरें खोल डाली और उसे चबूतरे से नीचे उतारा और उसे अपने साथ ले चले।

चलते-चलते मोहन ने शहजादी का हाथ पकड़ लिया। शहजादी बहुत हँसी और बोली, "तुम्हारे हाथ में तो सिर्फ एक अंगूठा है!"

ज्योंही वह हँसी, उसके होंठों से एक साथ बहुत से फूल झड़ पड़े। जहाँ फूल झड़ कर जमीन पर गिरे, वहाँ बहुत से फूलों के पौधे उग आए। इस तरह जहाँ-जहाँ से शहजादी, यूसुफ और मोहन गुजरते गए, उस लकोदक सहरा को गुलजार बनाते गए। मोहन को चूँकि शहजादी मिल गई, इस लिए वह बहुत खुश था। यूसुफ से कहने लगा, "भाई, चलो वापस चलें।"

यूसुफ ने कहा, "अभी इस जादू की दुनिया की थोड़ी और सैर कर लें। चार आने का टिकट लिया है। कोई मुफ्त थोड़े ही आए हैं। देखो, वह सामने क्या है!"

जादूगरों का चुनाव

सामने बहुत से लोग रंग-बिरंगी झंडिया हिलाते हुए जा रहे थे। यूसुफ, मोहन और शहजादी भी उन लोगों के पीछे-पीछे चलने लगे। मजमा जोर-जोर से नारे लगा रहा था, "अलाउद्दीन को वोट दो। जो अलाउद्दीन को वोट नहीं देगा, वह मुल्क का गद्दार होगा। अलाउद्दीन जिंदाबाद!"

मजमा इसी तरह नारे लगाता हुआ, झंडियाँ हिलाता हुआ शहर के एक बड़े चौक पर पहुँचा। यूसुफ ने देखा-लोग भूखे नजर आ रहे हैं, उनके कपड़े बोसीदा और तार-तार हैं। मगर फिर भी खुश नजर आ रहे हैं।

यूसुफ ने पूछा, "भई, क्या माजरा है?"

एक आदमी ने हैरत से कहा, "सारी दुनिया को मालूम है और तुम्हें मालूम नहीं है! आज जादूगरों का इलेक्शन है। वह देखो, सामने अलाउद्दीन अपना चिराग हाथ में लिए इलेक्शन लड़ रहा है।"

यूसुफ ने देखा। वाकई बड़े रंगा-रंग के झण्डों के दरम्यान अलाउद्दीन खड़ा तकरीर कर रहा था।

अलाउद्दीन कह रहा था, "भाइयो और बहनो! मैं भी तुम्हारी तरह एक मामूली आदमी हूँ। मैं एक दर्जी का बेटा हूँ। मैं तुम्हारे दुख-दर्द पहचानता

हूँ। मुझे मालूम है कि तुम लोग भूखे हो, गरीब हो, तुम्हारे जिस्म पर कपड़े नहीं हैं। बच्चों के लिए तालीम नहीं है। मुझे मालूम है कि पिछली हुकूमत ने तुम्हारे लिए कुछ नहीं किया। मगर वह सोने के देव की हुकूमत थी। मैं दर्जी का बेटा हूँ। मैं तुम्हारे सब दुख-दर्द दूर करूँगा। अपने इस जादू के चिराग की मदद से मैं तुम्हारे लिए हर तरह के ऐश का सामान मुहैया करूँगा। देखिए, मेरे जादू के चिराग के करिश्मे!"

यह कह कर अलाउद्दीन ने जादू के चिराग को अपनी हथेली से रगड़ा। फौरन एक जिन हवा में उड़ता हुआ नजर आया। और हवा ही में खड़ा हो कर कहने लगा, "अलाउद्दीन, क्या इरशाद है?"

अलाउद्दीन ने कहा, "मैं शहर के बेघर लोगों के लिए आलीशान महल बनाना चाहता हूँ। जरा एक महल लाके दिखा दो।"

जिन ने सिर झुकाया और गायब हो गया। दूसरे लम्हे वही जिन अपने हाथ पर एक आलीशान सात मंजिलों वाला चमकता हुआ महल लिए हाजिर हुआ। लोगों की निगाहें उस खूबसूरत महल की तरफ खिंचती चली गईं। महल के दरवाजे खुले थे। खिड़कियाँ खुली हुई थी। महल के अन्दर रोशनियाँ जगमग-जगमग कर रही थी। अन्दर कमरों में बाजे बज रहे थे। खूबसूरत कालीन और सोफे बिछे नजर आ रहे थ। लम्बी-लम्बी मेजों पर तरह-तरह के फल चुने हुए थे। उम्दा खाने, भुने हुए मुर्ग, पुलाव, मुतंजन, जर्दे, कोरमे, तरह-तरह की सब्जियाँ, फालूदे, फिरनियाँ, शरबत, आईसक्रीम घूमती हुई मेजों पर रखी हुई लोगों को नजर आ रही थीं। लोगों की लार टपकने लगी।

लाखों गलों से आवाज आई, "अलाउद्दीन को वोट दो! अलाउद्दीन जिंदाबाद! एक वोट, एक मुल्क! एक अलाउद्दीन, एक चिराग!!"

यकायक अलाउद्दीन ने ताली बजाई। जिन अपने महल समेत गायब हो गया।

अलाउद्दीन ने कहा, "पहले मुझे वोट दो, फिर यह महल तुम्हें मिलेगा।"

लोग धड़ाधड़ वोट देने के लिए जाने लगे। यकायक दूसरी तरफ से आवाज आई।

"लोगो! बेवकूफ ना बनो। यह अलाउद्दीन दर्जी का बेटा तुम्हें बेवकूफ बना रहा है। असली जादू तो मेरे पास है। जादू की टोपी, सुलेमानी टोपी!"

लोगों का मजमा दूसरी तरफ पलट पड़ा जहाँ बहुत बड़े बैंड बाजे के साथ एक बहुत बड़े चबूतरे पर दो दर्जन लाऊडस्पीकरों के सामने एक जादूगर सुलेमानी टोपी हाथ में लिए तकरीर कर रहा था। यूसुफ, मोहन और शहजादी भी उधर चले गए। वह कह रहा था।

"अलाउद्दीन ठग है। उसे हरगिज वोट न देना। अलाउद्दीन का चिराग पुराना हो चुका है। उसका जिन भी बूढ़ा हो चुका है। इतने दिनों से वह तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सका, अब क्या करेगा? अबकी बार तुम मुझे वोट दो, क्योंकि मेरे पास सुलेमानी टोपी है। यह टोपी मैंने बड़ी मुश्किल से हासिल की है। हजारों तकलीफें सह के, अपनी जान

की बाजी लगा के, बड़ी मुसीबतों के बाद मैंने इस टोपी को हासिल किया है।"

मोहन ने कहा, "इस टोपी में क्या खास बात है? मुझे तो यह सीधी-सादी सफेद रंग की टोपी दिखाई देती है।"

जादूगर ने मोहन की बात सुन ली। वह वहीं अपने चबूतरे से चिल्ला कर बोला, "यह कोई मामूली टोपी नहीं है। इसे पहन कर आदमी यूँ गायब हो जाता है जैसे गधे के सिर से सींग। देखो, देखो! सुलेमानी टोपी का कमाल! देखो।"

यह कह कर जादूगर ने सुलेमानी टोपी पहन ली और मजमा के दरम्यान से यकायक गायब हो गया। अब सिर्फ उसकी आवाज आ रही थी, "देखा! ये सुलेमानी टोपी का कमाल है। इसे पहन कर आदमी गायब हो सकता है।"

जादूगर ने अपने सिर से टोपी उतारी और अब वह लोगों को नजर आने लगा।

"इस टोपी को पहन कर आदमी गायब हो सकता है। जहाँ चाहे घूम सकता है। वह सारी दुनिया का सैर कर सकता है। वह जहाँ चाहे बगैर टिकट के जा सकता है और उसे कोई टोकने वाला नहीं। इस टोपी को पहन कर आदमी बड़े-बड़े राज मालूम कर सकता है, बड़े-बड़े लोगों के बड़े-बड़े राज! वह ऊँची से ऊँची सोसाइटी में जा सकता है और कोई उसे टोक नहीं सकता! इस टोपी को पहन कर आदमी वजीर बन सकता है, नौकरी हासिल कर सकता है। यह सुलेमानी टोपी है। इसके सामने अलाउद्दीन का चिराग बिल्कुल हेच (तुच्छ) है। इसे रगड़ने की जरूरत नहीं। बस इसे सिर पर पहन लीजिए, आपके सब काम पूरे हो जाएँगे। फिर अलाउद्दीन के पास एक ही चिराग है। लेकिन मैंने सबके फायदे के लिए हजारों सुलेमानी टोपियाँ तैयार कराई हैं। ये बण्डल के बण्डल जो आप चबूतरे पर देख रहे हैं, ये सब सुलेमानी टोपियों के हैं। आईए, मुझे वोट दीजिए और एक सुलेमानी टोपी लेते जाइए। एक वोट, एक सुलेमानी टोपी!"

लोग धड़ाधड़ वोट देने के लिए भागने लगे और शोर मचाने लगे, "सुलेमानी टोपी जिंदाबाद! अलाउद्दीन का चिराग मुर्दाबाद!!"

"हाहा! हाहा!!" तीसरे चबूतरे से एक जोर का कहकहा बुलन्द हुआ। सब लोग उधर देखने लगे। वहाँ एक और जादूगर सिर पर सफेद कागज की टोपी रखे, सफेद कागज का कोट पहने, आँखों में चश्मा लगाए, हाथों में अखबार लिए हँस रहा था और कह रहा था, "दोस्तो! यह सुलेमानी टोपी वाला बहुरूपिया है, बहुरूपिया। यह खुद तो वोट ले कर गायब हो जाएगा और आपको कपड़े की टोपियाँ दे जाएगा, चाहे आप उनको सिर पर पहनिए, चाहे थैला बना कर घर ले जाइए। दोस्तो! यह सुलेमानी टोपी किस काम की? गायब हो कर आप क्या करेंगे? अगर आपको इस जादू की दुनिया में रहना है तो सच्चा जादू तलाश करने की कोशिश किजिए। और सच्चे जादूगर को अपना बादशाह बनाइए। मुझे देखिए! मेरा जादू किसी को गायब नहीं करता। कोई हवाई महल नहीं दिखाता। मैं अभी आपके सामने वह चीज रखता हूँ जिसकी आपको जरूरत है।"

जादूगर ने उँगली से एक आदमी की तरफ इशारा किया। "कहो, तुम क्या चाहते हो?"

उस आदमी ने कहा, "मुझे अपनी जमीन में कुआँ चाहिए।"

जादूगर ने चबूतरे पर पड़े कागज के अम्बार से एक बड़ा सा कागज निकाला और उसपर कुछ मंतर पढ़ के फूँका और उस आदमी को दिया। उसे उस कागज पर अपने खेतों की तस्वीर नजर आई। खेत बंजर पड़े थे। यकायक उसे बीच में एक कुआँ नजर आया। कुएँ पर रहट चलने लगा। पानी फव्वारे की तरह निकल कर खेतों की सिंचाई करने लगा। आदमी के चेहरे पर रौनक आ गई। उसने देखा, उसके झोंपड़े से उसकी बीवी निकली, पानी का घड़ा लिए हुए। बीवी ने मुस्करा कर पति की तरफ देखा और पति उसी वक्त वह कागज हाथ में ले के अपने घर की तरफ भागा। वह भागता जाता था और कहता जाता था।

"मुझे मिल गया, मेरा कुआँ मिल गया।"

"तुम्हें क्या चाहिए?" जादूगर ने एक दूसरे आदमी से पूछा।

उस आदमी ने कहा, "हमारे कस्बे में कोई स्कूल नहीं है।"

जादूगर ने एक दूसरा पुरजा कागज का उठाया और उसपर मंतर पढ़ कर कुछ फूँका और फिर वह पुरजा कागज का उस आदमी के हाथ में दे दिया।

उस आदमी ने गौर से उस कागज की तरफ देखा। जहाँ उसका घर था, उसके बिल्कुल करीब एक नई और खूबसूरत स्कूल की बिल्डिंग खड़ी थी। बच्चे किताबें हाथ में लिए जा रहे थे। एक खूबसूरत बागीचे में बच्चे खेल रहे थे। यकायक स्कूल के गेट पर उसे अपने दो बच्चे नजर आए। वे दोनों हाथ हिला कर हैलो पापा कहने लगे। आदमी उसी वक्त वह कागज अपने हाथ में ले कर वहाँ से भागा। भागते-भागते कह रहा था वह–"हमें स्कूल मिल गया, हमें स्कूल मिल गया।"

फिर क्या था। मजमा जादूगर पर टूट पड़ा।

एक बोला, "मुझे जूता चाहिए।"

जादूगर ने उसे कागज का पुरजा दिया।

दूसरा बोला, "मुझे मोटर चाहिए।"

जादूगर ने उसे कागज का पुरजा दिया।

तीसरा बोला, "हमें अपने गाँव में एक अस्पताल चाहिए। एक स्कूल, एक नहर, एक थियेटर चाहिए।"

जादूगर ने उसे कागज का एक पुरजा दिया।

मोहन ने यूसुफ से कहा, "तुम्हें कागज पर कुछ नजर आता है?"

यूसुफ ने कहा, "मुझे तो सफेद कागज ही नजर आता है।"

मोहन ने कहा, "मुमकिन है उन लोगों को कुछ नजर आता हो। लेकिन अगर मान लिया जाए कि उन्हें कुछ नजर आता है तो आखिर कागज पर ही नजर आता है। उसकी हकीकत क्या है।"

यूसुफ ने उस आदमी को बाजू से पकड़ लिया जिसने जादूगर से जूता माँगा था और उससे पूछा, "तुम्हें जूता मिल गया।"

उस आदमी ने बड़े गुस्से से कागज का पुरजा यूसुफ के मुँह के सामने ला कर कहा, "देखते नहीं हो, मिल गया है। यह देखो।"

यूसुफ को सफेद कागज ही नजर आया।

यूसुफ ने कहा, "अगर यह जूता है तो इसे पहन कर दिखाओ?"

उस आदमी ने कागज के टुकड़े को पहनने की कोशिश की। कागज उसी वक्त बीच से फट गया। चरंद की आवाज सुनते ही जादूगर जोर से गरजा, "कौन है? कौन हकीकत पसन्द घुस आया है हमारी जादू की दुनिया में? उसे जल्दी निकालो। वरना ये सब कुछ तबाह कर देगा। हमारा जादू सब खत्म हो जाएगा।"

इतना सुनते ही अलाउद्दीन चिराग वाला, सुलेमानी टोपी वाला और जादू के कागज वाला और उनके हिमायती यूसुफ, मोहन और शहजादी के पीछे भागे। वह तो खैर हुई कि यूसुफ ने बड़ी चालाकी से काम लिया। उसने जल्दी से सुलेमानी टोपियों के बण्डल से तीन टोपियाँ निकालीं और उन्हें पहन कर मजमे के बीच में से गायब हो गए। वरना इतना बड़ा मजमा उनके पीछे पड़ जाता तो उनकी हड्डी-पसली भी नहीं बचती।

हाँफते-हाँफते तीनों जादू की दुनिया के दरवाजे से बाहर आ गए। बाहर चाँदी का देव बैठा चार आने के टिकट बेच रहा था। उन्हें वापस आते देख कर बड़ी आजिजी से कहने लगा, "तुम्हारे पास खाने को कुछ है? तीन सौ साल से भूखा बैठा हूँ। मेरे हाल पर रहम खाओ और कुछ खाने को दो।"

यूसुफ और मोहन और शहजादी ने सुलेमानी टोपियाँ देव के हाथ में थमा दीं और कहा, "इन तीनों टोपियों को मिला कर पहन लो। फिर तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा।"

(बाकी अगले अंक में)

अनुराग बाल पत्रिका

यादें

माली

–कमला पाण्डेय

पौष की सिहरन। जाड़े की ऋतु। सूर्य डरा हुआ सा सिमटा था। एक क्षण धूप निकलती, दूसरे ही क्षण बादल उसे पकड़ कर ले जाते......... दोपहर के समय भी सन्-सन् कर बहती तीखी हवा, अपना आधिपत्य जमाए थी।

थकी अलसाई आँखें, उदास मन लिए रजाई की गुनगुनाहट पाकर झपक गईं।

"ठक, ठक, ठक"–दरवाजे पर हल्की सी दस्तक। फिर सन्नाटा–फिर एक संवाद सा–"माता जी, सोय गइउ का?"–"नहीं तो"–फिर एक चुप्पी. ...."क्या माली है?".......माली! "हाँ, माता जी।" "दरवाजा खुला है माली, आ जाओ.......... .."

एक एक कर दस मिनट बीत गए। दरवाजा तो पूर्ववत् बन्द है.... अब कोई आवाज़ .....कोई पदचाप भी नहीं सुनाई दे रही.... फिर? दस्तक किसने दी थी?........अयँ........।

माता जी का मन व्यग्र हो उठा। धीरे-धीरे ज़ोर लगाकर उन्होंने आँखें खोलीं। रजाई से मुँह बाहर निकाला तो तेजी से कटीले शीत ने जोरदार तमाचा जड़ दिया। पूरा बदन कँपकँपा उठा।

एक, दो, तीन, चार.........टिक टिक टिक घड़ी की सुई समय बढ़ाती रही......लगभग आधा घण्टा बीत गया। अब वह लेटी न रह सकीं। शीत से लड़ने का साहस जुटा लिया था। रजाई हटाई। उठीं। दरवाजा ठेलकर बाहर निकलीं। बरामदा, गैलरी, गेट सभी ओर नजरें गड़ा कर देखा....... कहाँ है माली?

स्मृति अट्टहास कर उठी– इनको देखो! "माली आएँगे..... अब माली आएँगे–लाठी ठकठकाते हुए. ..? अरे, उसको मरे तो ६ महीने से अधिक हो गया।

"आँय, हाँऽ ऽ ऽ......... माता जी के हृदय में एक टीस सी भर गई, एक क्षण को सारा शरीर जैसे सुन्न सा हो गया...... वह चुपचाप शाल ओढ़कर सोफे पर आकर बैठ गईं। अवचेतन में बैठे माली ने अर्द्धनिद्रित अवस्था में माता जी के वर्तमान को झकझोर दिया था।

खुली आँखों के सामने अतीत वर्तमान बन उठा।

* * *

अब से तीस साल पहले जिस भगवान दीन को देखा था, मृत्यु से कुछ समय पहले तक उसमें थोड़ा-सा ही परिवर्तन हुआ था।

गेंहुआ रंग, कुछ-कुछ लम्बाई लिए हुए इकहरा बदन, सिर पर साफानुमा सफेद अँगौछा, शरीर पर आधी बाँह की बण्डी और कमर में फेंटा कसी धोती. ... माता जी स्कूल से लौटीं, तो गेट से घुसते ही उन्होंने देखा एक दुबला पतला व्यक्ति जिसके सिर पर पीछे की ओर अतिरिक्त मांस का एक छोटा सा गूमड़ और पीठ पर हल्का सा कूबड़ है, सिर झुकाए चुपचाप तन्मयता से माली के काम में जुटा हुआ है। पूछने पर पता चला वह भगवान दीन है। गोण्डा जिले में स्थित एक छोटे से गाँव का रहने वाला.........

भगवान दीन गरीब पासी था। जब पिता नहीं रहे, तो पट्टीदारों में झगड़ा हुआ। कुछ ने पिता की जमीन का एक हिस्सा कब्जिया लिया दूसरे दबंग माँ को मार पीटकर उठा ले गए। कोई बोलने का साहस न कर पाया। जबर्दस्त गिरोहबन्दी। बच्चे भटकते रहे। एक लड़के को कारिन्दा ने बेगार के लिए पकड़ बुलवाया। दूसरे को बड़ी बहन अपनी ससुराल ले गई। भगवान दीन बड़े थे, ससुराल वालों ने उन्हें कुछ लोगों के साथ शहर लखनऊ भेज दिया। कुछ दिन ससुराली पहचान वालों के साथ ईंटा गारा उठाने के काम पर लगे रहे, फिर सार्वजनिक निर्माण विभाग में दिहाड़ी मजदूरी पर काम मिला। यहाँ से लखनऊ विश्वविद्यालय में निर्माणाधीन छात्रावास में लेबर की हैसियत से ठेकेदार के अंडर (Under) काम किया।

भगवान दीन अतिशय विनम्र और कर्मठ था। वह अपने काम के प्रति समर्पण भाव से जुटा रहता। यूनीवर्सिटी के अधिकारियों ने उसे दिहाड़ी मजदूरी पर रखा। उसे छात्रावासों के इर्द गिर्द स्थित लम्बे चौड़े लॉनों की देख रेख पर लगा लिया। भगवान दीन बरसों तक एक ही जगह माली के पद पर काम करता रहा, लेकिन दिहाड़ी से स्थायी नहीं हुआ।

होस्टल के लड़के तन्मयता से अपने काम में डूबे इस मर्मस्पर्शी व्यक्तित्व को प्यार से 'माली' या 'माली बाबा' संबोधित करते।

प्रशासक जहाँ जरुरत होती, उसे काम करने भेज देते........ कभी उपकुलपति के दफ्तर में झाड़ पोंछ हेतु भेजा जाता, तो कभी सार्वजनिक निर्माण विभाग के अंडर। उसने विभिन्न विभागाध्यक्षों के घर पर भी काम किया। वह रजिस्ट्रार के यहाँ रहा। कई वरिष्ठ शिक्षकों के घर पर भी काम किया। उसने इन घरों में एक ईमानदार 'लेबर' की पहचान बनाई। उसने अधबनी बिल्डिंगों की हिफाजत की। उसे जो भी ड्यूटी मिलती उसे मुस्तैदी से अंजाम देता।

अधिकारी वर्ग के दफ्तर में जब भी पुताई व सफाई होती उसे बुला लिया जाता। यहाँ उसे फुर्ती, ईमानदारी और व्यवस्था पूर्वक काम करने के लिए कई बार सराहना मिली, इनाम भी प्राप्त हुए।

लेकिन एक समय ऐसा भी आया जब उसे कोई काम नहीं मिला। काम के अभाव में वह बेरोजगार हो गया। रहने खाने का ठिकाना न रहा......

* * *

गोण्डा के गाँव की जमीन का एक हिस्सा जो लगभग परती था, अभी भी बड़े लड़के के रूप में उसके नाम था। ससुराल वालों ने उसकी घरवाली को वहीं दो-तीन भतीजों के साथ रहने के लिए भेज दिया। ताकि हिस्से पर कब्जा रहे। बेरोजगारी के दिनों में माली ने उस भूमि पर खेती करने की कोशिश भी की। लेकिन बीज, खाद, सिंचाई और लगान इतना ज्यादा देना पड़ता कि गृहस्थी का बड़ा सा खर्च उससे पूरा न पड़ता। कुछ ही समय बाद वह कर्जदार हो गया और एक बार फिर काम की खोज में लखनऊ आ गया।

इस बार डालीगंज स्थित 'डेला हाउस स्कूल' की प्रबन्धिका ने उसे स्कूल लॉन सँवारने के काम पर लगा लिया। मालकिन सहृदय थीं। उन्होंने माली को

वहीं लॉन के एक कोने में बाँस और टीन की एक झोंपड़ी बनाकर रहने की इजाजत दे दी। वह सुबह से ही प्रिंसिपल मैडम साहिबा के घर की साफ सफाई में लग जाता। बाजार का काम भी कर देता जिसके एवज में उसे कपड़े लत्ते, खाने पीने का थोड़ा बहुत सामान आदि भी मिलता रहता।

उधर एक बार फिर उसे हबीबुल्ला होस्टल के लॉन की देखरेख पर दिहाड़ी के रूप में लगा लिया गया था।

'डेला हाउस' लॉन के पीछे की चहार दीवारी हबीबुल्ला होस्टल से जुड़ी हुई थी, जहाँ से लड़के कभी कभी कूदकर स्कूल लॉन में आ जुटते और मौजमस्ती की योजनाएँ बनाने का उपक्रम करते, लेकिन विनयशील, चतुर माली की सरलता, चौकन्नेपन और कानून भीतता के कारण वे उसकी 'उपेक्षा' करने का साहस न कर पाते। तब लड़के उससे छोटे-मोटे कामों का अनुपालन करवाते, उसे बाजार भेजकर पान-सिगरेट मँगवाते। कभी उसे कुछ खाद्य-पेय पदार्थ लाने पड़ते। लड़के उसके एवज में दस्तूर देकर हँसते हुए चले जाते लेकिन 'टिप' लेने और न लेने दोनों स्थितियों में वह हमेशा डरा हुआ सा काँपा करता।

यूनीवर्सिटी से उसे शाम को पाँच बजे छुट्टी मिलती, तब वह एक दो घरों में 'माली' का काम करने पहुँच जाता।

उस घर के साहब विश्वविद्यालय में प्रवक्ता थे। उनके बच्चे और कई रिश्तेदारों के लड़के भी इसी विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। 'माली' इन सबको, छात्रावास-लॉन की सिंचाई करते समय आते जाते देखा करता। इन सबों में वह ''सत्येन्द्र भैया'' को खास तौर पर पहचानता और मानता था। वे लम्बे-चौड़े हट्टे कट्टे और दबंग भी थे। जब चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों ने वेतन भत्ता और सेवा-शर्तों की अपनी लड़ाई लड़ी तो उनकी उस जद्दोजहद का 'सत्येन्द्र' ने पुरजोर समर्थन किया था–पुलिस का मुकाबला भी। सत्येन्द्र भैया के कहने पर होस्टल के बहुत से लड़के भी कर्मचारियों की तरफ से जुट गए। सत्येन्द्र जब कभी घर आते, तो उसकी आँखों में अतिरिक्त सम्मान का भाव भर जाता।

जब घर के और लड़के लड़कियों ने कुरेद-कुरेद कर 'माली बाबा' से सत्येन्द्र के बारे में पूछा कि वह

सत्येन्द्र को कब से और कैसे जानता है? तो वह सहज भाव से मुस्कुराते हुए कह पड़ा– "भैया कानून की पढ़ाई करत हैं, कानून जनतौ हैं, एही बदे गरीबन का साथ देय मा डरात नाहीं।"

उसके तीन लड़के और दो लड़कियाँ थीं। कोई न कोई गाँव से आता रहता उसकी झोंपड़ी में (आकर) कुछ दिन रहता, फिर जो भी वेतन या कहीं से कुछ मिलता, उसे ले लिवाकर चला जाता। माली को केवल देना ही देना था पाना कुछ नहीं। गाँव में उसकी थोड़ी सी खेती योग्य जमीन थी, जिसे उसकी मालकिन पत्नी देखती। खेती से जो भी प्राप्त होता, अधिकांश उसके भाई भतीजों की भेंट चढ़ जाता। माली जो कुछ शहर में कमाता, वह भी गाँव भेज देता। वह खुद गाँव बहुत कम जाता। कभी कभार त्योहारों में चला जाता। उसके साथ उसका नं. २ लड़का रहता था। वह मिर्गी का मरीज था। जब वह इस बँगले पर आता, तो प्रायः अपने साथ लड़के रमेश को भी लाता।

माता जी शिक्षिका थीं। सामाजिक कामों में अति व्यस्त। घर पर जब वे वापस आतीं, उन्हें माली कोई न कोई काम करता हुआ मिलता। साहब और घर के लड़के लड़कियाँ उसे कभी कभार चाय वगैरह पिला देते...... लेकिन माता जी उसकी कर्मठता और काम की शैली पर चकित मुग्ध थीं। गरीब निरक्षर यह व्यक्ति इतना ईमानदार। ऐसा व्यवस्थित ढंग का काम और इतना गुणी....... वे उसका खास ध्यान रखतीं।

माली बिना कहे ही आँगन, गैलरी बरामदा और कभी-कभी कमरों की सफाई भी करता। क्या मजाल जो लॉन में एक गन्दा तिनका या बरामदा और गैलरी में धूल का एक कण तक मिल जाए। वह रबर ट्यूब को नल की टोंटी में बाँध कर फौवारे की तरह पानी डालकर पत्ती-पत्ती धो डालता। खर पतवार रहित उसके गमले और क्यारियाँ अनेक वर्णी सुवासित फूलों से गमकती रहतीं। कई तरह की बेलों की लतरों को काट-छाँट बाँधकर इस तरह का रूप दे देता कि लॉन से उठने की इच्छा ही न होती। साहब लॉन के निकटस्थ बरामदे में आरामकुर्सी डाले लड़के-लड़कियों को पढ़ाते रहते या मिलने जुलने वालों से दुनिया भर की बहस बातें करते रहते।

गेट के बाहर अगल-बगल की जगह को कूड़ा स्थल या आते-जाते लोगों का मलमूत्र स्थान न बनने देने का उपाय भी उसने सोच लिया.........

लगभग छः फुट चौड़ी और बारह फीट लम्बी जगह को नागफनी जैसी कँटीली कैक्टस की झाड़ी से बाड़ चहारदीवारी का रूप दे दिया। गेट से कुछ हटकर उसने एक किनारे के हिस्से को बगीचे का गेट बनाया। बाँस की खपच्चियाँ काट कर और उन्हें पतले तारों से बाँधा, फिट दीवार में गाड़े गये मोटे कीले से जकड़कर बगीचे का सुरक्षा कवच खड़ा कर दिया था।

यहाँ उसने बैंगन, तोरई, मूली, पालक, धनिया, मिर्च, टमाटर की सब्जी उगाने का सिलसिला भी शुरू किया। गैलरी में खुली नाली को ईंटों से ढककर उन पर गेरु से रंगे या पक्की सीमेण्ट के गमले लाकर रख दिए, जिनमें वह अजवाइन और सरसों के बीज छींट देता, जिनके फूलने पर चारों ओर भीनी खुशबू फैल जाती। आँगन के कोने में पपीता और अमरूद लगाए गए। चारों ओर दीवार और नाली के किनारे-किनारे कुछ दूरी पर सजावटी पत्तियों के गमले, तुलसी और एकाध कैक्टस के फूल वाले गमले भी उसने रखे थे। बाड़ के किनारे-किनारे उसने दुर्लभ मेंदही के दो पेड़ लगाए जिनकी पत्तियों को तोड़कर वह मुहल्ले भर की लड़कियों और औरतों को देकर उपकृत करता रहता। उसने लॉन के पीछे के एकदम किनारे के हिस्से का बेलों और अमरूद की बढ़ी हुई शाखों को बाँस के सहारे बाँध फैलाकर पाढ़ या छत्ते का रूप दे दिया। घर के लड़के और आने जाने वाले भी उसकी जब तब मदद कर देते, उसको भरपूर प्यार और सम्मान भी देते। वह रास्ते में भी देखता तो परिचितों के हालचाल पूछ लेता। आने जाने वाले छात्र-छात्राएँ और शिक्षकों की नजर में भी वह घर का एक सदस्य जैसा था। वर्मा जी खास कर जब

भी आते उसको दस रुपये का एक नोट जरूर देते, लेकिन माली का व्यवहार देने और न देने वाले सभी के प्रति एक सा रहता। उसके लगाये फूल और पौधे भी आगंतुको का मानो स्वागत करते। उसकी सफेद मुलायम सेम की बेल छत्ते पर फैली रहती, उसमें इतनी सेमे फलतीं कि आस पास के घरों को भी जब तब भेज दी जातीं। कद्दू की बेल बगीचे और छत्ते से होकर खुली छत तक पहुँचा दी गई थी, जहाँ हरे-हरे पत्तों में बतियाँ फूल-फूल कर बड़े-बड़े कद्दू छिपे पड़े लुढकते रहते। करी पत्ते का पौधा उसके बगीचे के अलावा मुहल्ले में कहीं नहीं था।

यह घर माली का अपना घर जो बन गया था, सो वह जहाँ जो भी करना चाहे, जैसे भी इच्छा हो करे, उसके काम में कोई हस्तक्षेप न करता। माता जी की छोटी पुत्री को पेड़-पौधों से विशेष लगाव था, वह माली के साथ जुट जाती उसे चाय पानी देकर उसके पास ही बैठ जाती और माली बाबा से फूलों पौधों आदि के बारे में तरह-तरह की जानकारियाँ लेती देती। माली भी 'बिटिया' से परामर्श करता रहता। वह गमले, बाल्टी, फावड़ा, रबर ट्यूब, तार, बाँस, बीज, खाद मिट्टी तक खुद ही माँग या खरीद कर ले आता। वेतन के समय अपनी तरफ से याद दिलाने पर वह संकोच के साथ सामानों के पैसे बता देता जो उसे दे दिए जाते।

माता जी को माली के प्रति विशेष स्नेह था। माली को चाय बहुत प्रिय थी। वे बाहर से आते ही उसके लिए लोटा भर चाय बनातीं। संभव होता तो साथ में नाश्ता भी देतीं, जिसे खा पीकर वह घण्टों अपने काम में दत्तचित्त जुटा रहता। माता जी उसके लिए शाम का खाना पर्याप्त मात्रा में बनाकर बनाए हुए बर्तनों में ही रखा रहने देतीं, जिसे कुछ वह खा लेता, कुछ बाँध ले जाता, फिर उन बर्तनों को माँज धोकर किचन में रख देता और वहाँ पहले पानी डालकर धोता, फिर कोना-कोना साफ कपड़े से पोंछ कर चमका देता।

माता जी, साहब और उनके अपने बच्चों के लिए यह निम्न (शूद्र) जातीय माली घर का एक मान्य सदस्य जैसा था, जिसके साथ किसी भी प्रकार की छुआछूत, असम्मान, दूरी या अविश्वास जैसी कोई बात नहीं थी। पूरा घर खुला था उसके लिए, लेकिन साहब के अन्य रिश्तेदारों के लिए वह एक "नौकर" मात्र था, जिसे वे अक्सर चाय पानी देने की बात भूल जाते या ऊँट के मुँह में जीरा के समान खाद्य पदार्थ, गये गुजरे ढंग से देते, लेकिन उसने ऐसी तमाम बातों को जीवन में नजरअन्दाज करना सीखा था।

अगर काम को पूजा कहा जाये तो माली उसका अद्भुत उदाहरण था–हर बने बिगड़े का ध्यान और जिम्मेदारी आगे बढ़कर वह स्वयं ले लेता। नाली जाम हो गई......... "जमादार काहे बुलै हौ। जमादार सार का करी, तमाम पैसौ लेई, औ ठीक से सफैऔ न करी–हम खुदै करब" और वह बड़ा सा मोटा बाँस, टीन का टुकड़ा और लोहे का पंजा लाकर जुट जाता। कूड़े को ठेल-ठेल कर खूब पानी डालता, कूड़ा इकट्ठा कर कूड़े घर पर जाकर डाल आता। आँगन और गैलरी तक खूब धो पोंछकर चमका डालता। तेजाब लाकर पॉट साफ करता और साबुन से वाश बेसिन धोया करता। सारे काम निपटाकर, आँगन के कोने में लगे नल के पास बैठकर खूब मल मल कर नहाता। सारे कपड़े धोकर बगीचे में सुखा देता। तब एक अँगौछा लपेट कर चुपचाप एक कोने मे बैठकर खाना खाता। कई-कई बार उसे बताना पड़ता कि माली काफी देर हो गई है, अब घर जाओ, लेकिन नौ-साढ़े नौ बजे रात से पहले वह घर न जाता। चलते-चलते भी उसे कोई न कोई कूड़ा माचिस की कोई तीली ही सही पड़ी दिखाई पड़ जाती, जिसे उठाकर फेंकने के लिए वह लेता जाता। जबसे उसका मोतियाबिन्द का आपरेशन हुआ था, वह लाठी ठकठकाते हुए सड़क पर किनारे-किनारे चलते हुए आता जाता। रिक्शे के लिए दिए गए रुपये या आने जाने वालों से मिलने वाली स्नेह भेंट वह अपने ऊपर खर्च न

शेष पृष्ठ 24 पर

मोटूराम

मेरी कक्षा में पढ़ता है,
भाई मोटूराम।
खाता है दिन रात चैन से,
करे न कोई काम।।

महाबली है छीन झपटकर,
सबका खाना खाता।
लेकिन अगर मार दो कसकर,
हाथी सा गिर जाता।।
नहीं मानता बुरा कभी वह,
सबको खूब हँसाता।
और स्वयं भी हँसते-हँसते,
लोट-पोट हो जाता।।

कभी कभी वह बड़े शौक से,
ऊँचे सुर में गाता।
और कभी छोटे बच्चों के,
पीछे दौड़ लगाता।।

मोटा है पर मन का भोला,
अपना मोटूराम।
इसीलिए तो हम सब बच्चे,
करते उसे सलाम।।

—डॉ. परशुराम शुक्ल

मेरी गुड़िया

सीधी-सादी मेरी गुड़िया
सादा इसका वेश।
बड़े चाव से खाती है यह
बंगाली संदेश।
दाल भात और रोटी भाजी
गरम-गरम हों या हों ताजी।
यह कुछ भी खा लेती, देती—
नहीं कभी उपदेश।
सींना, बुनना और कढ़ाई
साफ-साफ दिखती चतुराई।
बड़े सलीके से यह भरती—
तरह-तरह के वेश।
पढ़ने लिखने में यह आगे
सबसे तेज दौड़ में भागे।
नहीं मानती कभी किसी से—
यह कैसा भी द्वेष।
पाला इसको बड़े जतन से
है मेरा अनमोल रतन ये।
लोकल इसका ब्याह रचाऊँ,
भेजूँ नहीं विदेश।

-यशवंत गर्ग

बुलबुल

आकर पलभर मेरे आँगन
क्यों उड़ जाती हो बुलबुल?
पता चल गया क्यों तू
मीठे-मीठे गाने गाती हो,
रोज सबेरे अमरूदों की
टहनी पर क्यों आती हो
खाती छिप कर पके हुए फल
तेरा भेद गया सब खुल।
उड़ती रहती शाखाओं पर
कभी नहीं तुम थकती हो,
लगता है मनभावन जब-जब
पंखे खोल फुदकती हो
यह उड़ना, नाचना, थिरकना
सचमुच कितना है मंजुल।
खिलें फूल, इठलाएं कलियाँ
जब सारी बगिया महके,
अमराई की डाल-डाल पर
फुदक-फुदक जब तू चहके
लगता है कानों में मेरे
जैसे शहद गया है घुल।

—रामानुज त्रिपाठी

नया साल

नया साल आया सपने में
बोला बोलो कैसा होऊँ,
अबकी बरस तो सोचा है
बच्चों के मन जैसा होऊँ,

दूध दही सब आइसक्रीम हों
दाल भात चॉकलेट टॉफी,
भाजी साग बदल कर सारे
बन जाएं मिश्री की डाली,

कक्षा में हो धमा चौकड़ी
बँटे समोसा और कचौड़ी,
मास्टर जी न लाएं छड़ी,
पढ़ें मजेदार किस्सों की लड़ी,

इस पर नया साल ये बोला
ये तो है फेहरिस्त बड़ी,
इसको तो सुनते सुनते ही
बीत गई वरदान घड़ी।

—डॉ. रीता हजेला 'अराधना'

दस में दस

दादी तुम तो पढ़ती रहती
बस एक ही पुस्तक,
अक्षर अक्षर रटते रटते
बोलो कितने बीते बरस,
आखिर ऐसा क्या लिखा है
इस रामायण के अंदर,
पढ़ पढ़ अब तक मन न ऊबा

कैसा है जादू मंतर,
चलो परीक्षा लेती हूँ मैं
जल्दी दो सारे उत्तर,
देखूँ तुम पाती हो या नहीं
पूरे दस में दस नम्बर।

—डॉ. रीता हजेला 'आराधना'

पृष्ठ 21 से आगे

करता। अपने बच्चों पर खर्च करता या घर भेज देता।

एक बार माली का लड़का रमेश गेट से बाहर झाड़ू लगाते-लगाते अचानक बेहोश होकर गिर गया। उसे मिर्गी का दौरा पड़ा था। गर्मी के दिन, सभी लोग लॉन में बैठे थे। उसके मुँह से झाग निकल रहा था, और हाथ-पैर ऐंठ रहे थे। माली हाथ का काम छोड़ उसके पास आकर गमगीन, निरुपाय सा बैठ गया। कुछ लोग ओझा बुलाने की बात कर रहे थे, तो कुछ जूता सुँघाने का सुझाव दे रहे थे, साहब अस्पताल भेजने को तत्पर थे, बाकी तमाशबीनों की तरह आकर जमा हो गए थे। अचानक "बड़े भैया" (साहब के लड़के) आ गए। उन्होंने इस तरह रमेश को बेहोश देखा, तो साइकिल पटकी और तेजी से पास पहुँचा–"क्या हुआ इसे?" उन्होंने हौले से मरीज को दोनों हाथों में भर लिया और माली की सहायता से गेट से उठाकर अन्दर लॉन की मखमली ठंडी घास पर लिटाया। उसने जूता सुँघाने या ओझा बुलाने जैसे उपचारों के लिए लोगों को कस कर घुड़क दिया, और स्वयं मरीज के हाथ पैरों को ऐंठने से बचाने के लिए जुट पड़ा। गर्दन सतत सीधी रखने और जीभ दाँतों से कहीं कट न जाए, इसके निराकरण में भी जुटा रहा। उसके इस प्राथमिक उपचार और सतत प्रयास से कुछ समय बाद ही बेहोश लड़के ने आँखें खोल दीं, और उठकर बैठने की कोशिश करने लगा। वह माली का प्रिय पुत्र था–दूसरों से सर्वथा उपेक्षित।

माली कुछ समय चुपचाप जड़वत् बैठा रहा, फिर नम हो आई आँखों की कोर को अँगौछे से छिपाकर पोंछ लिया.... बड़े भैया ने कहा–"माली! रमेश ठीक है..... क्यों रमेश? रमेश ने किंचित स्मित से कहा–हाँ भैया....साहब ने परिचित रिक्शे पर दोनों को घर भेज दिया। "बड़े भैया" ने रास्ते में डॉक्टर से परामर्श करके रमेश को दवा दिलवाई और कुछ रुपये भी दिए।

लगभग २० दिन बाद माली आया। रमेश एकदम ठीक था। वह पहले की तरह अपने काम पर लगा रहा। इस बीच साहब का परिवार लगातार तरह-तरह की परेशानियों से घिरता गया। साहब के छोटे भाई को कठिन बीमारी ने घेर लिया। वे सपरिवार उनके यहाँ रहने आ गए। लड़के लड़कियों की परीक्षाएँ। काम का अत्यधिक बोझ। बड़े भैया अलग तरह के फसादों में उलझाए जाते रहे। माता जी की राजनीतिक घेरेबन्दी और अप्रत्याशित आर्थिक कठिनाइयों के कारण वे अनिद्रा का शिकार होती गईं।

चार महीने बीत गए। माली को वेतन नहीं मिला। अति व्यस्तता में साहब शायद भूल गए। उसने भी न माँगा, न याद दिलाया। किसी अन्य से पता चला कि इस दरम्यान उसके गाँव के घर में डाकुओं ने लूट मचा दी। लड़की की शादी के लिए जुटाया गया सारा गहना, कपड़ा, बर्तन और सामान उठा ले गए। एक लड़का घायल हो गया, और छप्पर में आग लगा दी गई। एक दाना या एक कपड़ा तक नहीं बचा, लेकिन उससे जब माता जी ने पूछा–माली! तुम्हें अपने गाँव की लूट और आगजनी की बात हम लोगों को बताना तो चाहिए था। तुमने वेतन की भी याद नहीं दिलाई, तो उसने कहा–"का कहित, हिंया खुदै आफत मची रहै।"

जानकारी होते ही साहब ने अपने तमाम ऊनी सूती कपड़े, रुपये तथा माता जी ने कपड़े, बर्तन और बहुत सा खाद्यान्न दिया।

लड़कियों की शादी हो गई। साहब के भाई और 'बड़े भैया' की बीमारी बढ़ती गई, और एक दिन जीवन और मौत के कठिन संघर्ष में दोनों के प्राण दीपक बुझ गए। साल भर भी नहीं बीता कि साहब के रिश्तेदारों के भी तीन जवान लड़के-लड़कियों का प्राणान्त हो गया और तब साहब के भी इर्द-गिर्द मृत्यु ने घेरा डाल दिया–साहब भी काल कवलित हो

गये।

माता जी पर तो जैसे दुख का पहाड़ टूट पड़ा हो..... वे सब तरफ से अकेली सब ओर घोर अँधेरा .... लेकिन स्वार्थी तत्व ऐसे ही मौकों की ताक में रहते हैं। वे कई रूपों में सामने आए। अपना जाल बिछा दिया। कुछ सीधे संघर्ष पर उतर आए, दूसरे लोग सहानुभूति के माध्यम से एक मात्र मकान पर काबिज होने का उपाय करने लगे। कुछ ने राजनैतिक दिशा पर बल दिया, तो कुछ रिश्तेदार आध्यात्मिक मार्ग पर चलकर शान्ति प्राप्ति का उपदेश देने आते......

किंकर्तव्यविमूढ़ माता जी टुकुर टुकुर देखा करतीं। उनकी सोचने समझने की शक्ति चुक सी गई थी। उन्हें गहरा मानसिक आघात लगा था। वे भूल-भूल जातीं, यहाँ तक कि एक क्षण पहले कौन-सा वाक्य कहा था और अब उसी तारतम्य में क्या कहना है, इसका ध्यान ही न रहता। कुछ दिन वे लड़कियों के साथ रहीं, लेकिन वहाँ भी मकान की रेखरेख एक पचड़ा है। एक अनावश्यक जंजाल। अतः उसे बेंच देने की बातचीत शुरू हो गई।

माली इन तरह-तरह की शक्तियों के मनतव्य को भाँपता रहा। अपनी सामाजिक हैसियत और हक के अनुरूप ही वह मौन रहता, पर एक-एक पात्र को जान, समझ, गुन और परख लिया था।

माली के लिए यह घर तीर्थ स्थल की तरह था... कितना बड़ा शरणगाह-जो भी भूखा टूटा आता साहब गले लगा लेते, भैया उनसे भी बढ़कर ..... भैया दुनिया छोड़ गए साहब भी नहीं रहे..... कितने चाव से बनवाया और इस्तेमाल होता था इस घर का एक-एक कोना कंगूरा और अब-चारों तरफ से 'छीना झपटी'-खण्डहर बने तो बने, भलाई के कामों की यादें मिटें तो मिटें उन्हें तो इसको निचोड़कर इससे मिलने वाले कलदारों से मतलब है.... इसकी देखरेख सजाने सँवारने में उनकी रुचि किसलिए हो?

उसने साहब के न रहने पर फटी-फटी सूनी आँखों से घर को देखा। एक-एक खिड़की दरवाजा,

आँगन, गैलरी, बरामदा, लॉन और बगीचा जैसे बिलख उठे हों...... माली के दिल में हूक उठी, उसने महसूस किया साहब के न रहने पर भी उनके घर और बगीचे की जिम्मेदारी उसकी अपनी है, उसे वेतन मिले न मिले। लेकिन इसकी देखभाल तो वही करेगा.... करता रहेगा...... और वह आता रहा...... जब वह आता, घर में कब्जा कर रहने वालों को अखरता। धीरे-धीरे वह उपेक्षा का पात्रा बनता गया-परन्तु उसने इस ओर ध्यान देना बन्द कर दिया। पर नियमित आना नहीं छोड़ा। २-३ घण्टे वह इस 'घर' में जरूर रहता। झाड़ू लगाता, सिंचाई करता, पेड़-पौधों को सहलाता और तब 'खैनी' मुँह में रखकर लाठी टेकता हुआ चला जाता। चाय नाश्ते की दरकार नहीं है। वह तो अपने मंदिर में आया है।

इसी दरम्यान उसके प्रिय पुत्र रमेश ने भी एक दिन दम तोड़ दिया। लेकिन इस बार उसने आवश्यम्भावी समझकर अपने को सँभाल लिया। जूझने का दूसरा नाम जीवन है। उसने ना 'डेला हाउस' छोड़ा न माता जी के बंगले पर जाना।

विश्वविद्यालय में भी उसे कोई न कोई काम मिलता रहा।

माता जी को कहीं चैन न था–न घर न बाहर, न समाज में न अध्यात्म में। इस परम स्वार्थी संसार में वे सबका 'निशाना' थीं।

माता जी पर हुए चतुर्दिक मौत के ऐसे वज्र प्रहारों से वृद्ध माली का हृदय भी टूक-टूक हो गया था। उसने एक दिन अनुरोध भरे स्वर में उनसे कहा–

"माता जी, हम नौकर आदमी हन, पै आपसे एक बात कहै चाहित–कै आप कहूँ न जाव, ई आपकेर ठिकाना आय, आपन घर अपनै होय, न बिटियन के दरवाजे जाव और कौनों के टुकड़ा खाव, अउर न एहका बेंचौ खोंचौ..... छोटे मनई हन, का कही पै एतना बचन देइत है कि जब तक जियब तोहार सेवा करब माता जी।"

इतना कहकर वह चुप हो गया। लॉन में घास पर सिर झुकाए बैठा रहा। माता जी बरामदे में पास ही कुर्सी डाले ध्यान से उसकी बातें सुनती रहीं, फिर धीरे-धीरे उठकर किचन में गईं और चाय बनाकर ले आईं। माली को चाय पकड़ाते हुए वे बोलीं–"तुम ठीक कहते हो माली....." इससे अधिक वे कुछ न बोल पाईं....... माली के मुख पर हजार वाट के बल्ब से अधिक की दीप्ति फैल गई।

माता जी रिटायर हो गई थीं। पर उनका रिटायरमेण्ट एक संघर्ष बन गया। पेंशन बनी और चोरी हो गई। किरायेदार शोषक बन बैठे। दूध, अखबार, तरकारी, धोबी, राशन, वाहन तरह-तरह के खर्चे...... आय का स्रोत न रहा। खर्च दबोचने लगे। कर्ज के बोझ टीसने लगे। लड़कियों ने साथ रखने के बार-बार प्रस्ताव रखे, पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने स्वर्ण पिंजर और कँटीली राह में से संघर्षपूर्ण जीवन को वरीयता दी।

थका तन, जिद्दी मन और ढली उमर...... कभी उँगलियाँ जम सी जातीं, कभी हाथ-पैर ऐंठने लगते। माता जी के पैरों में प्रायः सूजन हो जाती। दर्द के कारण बुखार भी आ जाता मस्तिष्क भी प्रभावित हुआ। भुलक्कड़पन के कारण कई बार अपमानित भी हुईं.... नाते रिश्तेदारों का वृहत् समूह–उनकी दृष्टि में अब वे एक डूबता सूरज थीं। अर्घ्य देने से फायदा क्या?

ऐसे में माली ने आगे बढ़कर तमाम जिम्मेदारियाँ स्वयं ओढ लीं। साहब के न रहने पर वह इस घर का संरक्षक और दुख बाँटने वाला सहयोगी बन गया।

माता जी अक्सर बीमार हो जातीं। उनका शरीर और मस्तिष्क दोनों अशक्त हो उठे। माली को टूटी हड्डियों को जोड़ लेने और दर्द करती नसों का हल्के दाब से ठीक कर लेने का अच्छा ज्ञान था। वह माता जी के सूजे हुए पैरों को सरसों के तेल में मेथी अजवाइन खौलाकर गर्म तेल की मालिश से राहत पहुँचाता। पीने के लिए स्वच्छ पानी और सेंकने के लिए गर्म पानी की बोतल तैयार रखता। स्वयं राशन और अन्य सामान बाजार से खरीद कर यथा स्थान साफ करके रखता। खाने की सारी पूर्व तैयारी कर रखता। वह माता जी को जहाँ तक संभव होता आराम देता, कोई काम न करने देता।

वृद्ध माली खुद भी अशक्त हो गया था। चलते-चलते गिर जाता। कम दीखने के कारण ठोकर खा जाता। हाथ-पैर कट-फट जाते। कमजोरी और बुखार में भी जब तब जकड़ जाता। फिर भी वह माता जी के घर की ताला कुंजी तक सँभालने की जिम्मेदारी में गर्व का अनुभव करता।

और एक ऐसा समय भी आया, जब माली की नजरें बदल गईं। परम स्नेहिल सरपरस्त माता की बजाय वे एक 'खुराट' औरत नजर आईं।

इस बार जब माली बीमार पड़ा तो उसका बड़ा लड़का पिता की देखरेख के लिए अपनी पत्नी को उनके पास छोड़ गया और स्वयं काम की फिराक में लुधियाना चला गया।

स्वस्थ बहू शोख, चंचल और यौवन से भरपूर। घर की सीमा में बन्द रहकर वृद्ध ससुर की सेवा में उसका मन न लगता, हाँ दिखावा कर देती...... पर

हमेशा से उपेक्षित पिता, बीमारी के समय बहू आगमन की अप्रत्याशित खुशी से भाव विभोर हो, वात्सल्य में ऊब डूब गया।

लड़का चला गया, अब बहू की जिम्मेदारी उसकी अपनी है। बहू घर में आराम से रहे, वह उसकी सारी जरूरतें पूरी करेगा, शान से रखेगा–उसे कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न सहनी पड़ें।

पर बहू का लक्ष्य कुछ और था–"मुफ्त में खूसट की सेवा? वही क्यों खटे......? खेलने खाने की उमिर........?

कुछ दिन बाद ही माली को महसूस होने लगा कि घर की इज्जत बन कर आने वाली कुछ भी गुल खिला सकती है....... उसकी अनुपस्थिति में अगर बहू का पैर फिसला तो वह लड़के को क्या जवाब देंगे........?

काफी दिन बाद माली माता जी के बँगले पर आया। साथ में रिक्शे पर बैठकर आई उसकी सजी सँवरी बहू.....

"आज से हमरी जागा हमार बहू काम करी" माली ने कहा। माता जी को शंका हुई। यह काम

सँभाल पायेगी क्या? पर उन्होंने कुछ नहीं कहा.......

उसको आए हफ्ता भर भी नहीं हुआ कि माता जी परेशान हो उठीं...... उसकी अन्य मनस्क अराजक कार्य शैली, उधर कामकाजी माता जी .... एक-एक मिनट की व्यस्तता। उनकी चीजें अपनी जगह से गायब होने लगीं। पूरे का पूरा चाभियों का गुच्छा उसने खो दिया। सारे नए ताले फिर से खरीदने पर ही वे घर से बाहर जा सकती थीं। उनके काफी रुपये पैसे और कपड़े भी गायब। उनके डाँटने या समझाने का भी उस पर कोई असर न था, पूरा घर अस्त-व्यस्त, गंदा। वह काम करने आती, पर सारा दिन गेट पर या बगीचे में बैठी रहती। माता जी परेशान हो उठीं..... पर माली पुरुष था..... वह उसे घर पर हर हाल में रखना चाहता था। प्यार से, डाँट से, समझौता करके, बहू को रखना उसके अहं को चुनौती जो थी......। वह उसकी गलतियों को नजर अन्दाज करने लगा। इसलिए जब माता जी उसकी शिकायतें करतीं, तो वे उसे बुरी लगतीं, बहुत बुरी. ...

बहू की बजाय उसका क्रोध माता जी की ओर मुड़ गया। उसने माता जी पर दो लोगों को वेतन देने का दबाव बनाना शुरू कर दिया। जबकि उसने खुद आना बन्द कर दिया था। एक दिन उसने दो हजार रुपयों की अप्रत्याशित माँग पेश की..... माता जी हैरान अकेली, बीमार स्त्री, पेंशन पेपर्स चोरी हो गए–धनाभाव से ग्रस्त, प्रतिकूल परिस्थितियाँ, वे क्या करें? पर माली के लिए उनका हर कथन अविश्वसनीय था–उसकी नजरें जो बदल गई थीं। अब माता जी शोषक थीं–एक 'खुर्राट औरत' उसने उग्र रूप धारण कर शालीनता को दरकिनार करते हुए कहा–

"साहब रहे नाहीं, भैयौ चले गे, कौनौ दाब तौ रही नाहीं.....तुइ रांड, वेवा, इतनी बड़ी कोठी की मलकिन बनि गइऊ, कहत हउ पैसा नाहीं, पैसवा दाबे धरे होइहौ-अरे, को मानी तोहार बात–गरीब का पैसवा मारि के सुख न पैहौ" पै हम देखब कैसे न

देइहौ हमरी बहुरिया का हक........."

"बहू आपन होय, आपन जाति बिरादरी आपन खून.... मौके पर वही काम देई।"

माता जी आश्चर्य चकित रह गईं।

सदियों के दबे कुचले शोषित पुरुष का आक्रोश इस तरह फूट पड़ा था...... उसके अहं को, अपने परायों और वर्ग विभेद को एक स्त्री की ओर से चुनौती मिल रही थी.... उसके मन में 'शोषक' के प्रति नफरत का भाव उठा....। माता जी स्तब्ध थीं–यह वही माली है, जिसने निश्छल अनुरोध के साथ आजीवन दुख बँटाने का वचन दिया था। गूँगे की तरह उसकी एक-एक बात सुनती रहीं, उसका दुर्व्यवहार देखती रहीं......

कुछ दिन बाद घर में पानी के अभाव की समस्या बहुत बढ़ गई। माता जी ने तब एक प्लम्बर बुलाकर उससे कहा कि वह पुराने टुल्लू की जगह नया महँगा टुल्लू लाकर फिट कर दे। उसी दिन माली घर आया, उसने अपनी बिरादरी के प्लम्बर को नये का रुपया लेकर कोई पुराना टुल्लू लाकर फिट करने की हेराफेरी में सहयोग किया, तिगुनी मजदूरी दिलवाई, और घर का पुराना टुल्लू उठा ले जाने में मदद की. .... उसने आर्थिक नुकसान पहुँचाकर बदला ले लिया था।

इस घर के बीसों साल परम हितैषी रहे नायक को खलनायक के रूप में बदलते देर नहीं लगी।

इसके बाद माली पूरे महीने नहीं आया। माता जी ने उसके आक्रोश पूर्ण व्यवहार को जीवन संघर्ष मान लिया और उसके कटु, कठोर, अपमान जनित शब्दों को ओस की बूंदों की तरह समय रूपी धूप में सूख जाने दिया।

छः महीने तक माता जी स्वयं शहर के बाहर रहीं–लौट कर आने के बाद एक दिन उन्होंने दूर से माली को आते हुए देखा। वह कुछ अधिक बूढ़ा हो गया था, उसकी आँखें झुकी हुई थीं और दुःखी विषण्ण मुख दीनता का पर्याय था। धीरे-धीरे लाठी टकेता हुआ वह घर के अन्दर चला आ रहा था। माता जी लॉन में चुपचाप बैठी थीं–वह काँपते, थरथराते हुए सीधा उनके पैरों पर गिर गया.......

उसकी बहू घर में रखे हुए पी. एफ. और पेंशन के हजारों रुपये व खरीदे गए बर्तन लेकर किसी दूसरे के साथ भाग गई थी। उसकी नौकरी स्थाई कर दी गई थी और सेवानिवृत्त होते ही कर्मचारी यूनियन ने उसे दो दिन पहले ही पेंशन का बकाया और भविष्य निधि के रुपये दिलवाए थे। "इस हरजाई बहू ने कहीं का न रक्खा.... आर्थिक हानि तो पहुँचाई ही–लड़के से क्या कहूँगा, कि उसे रख न सका.... आपके साथ जो गलत बर्ताव किया, वह अगले जन्म में भी माफ करने योग्य नहीं है" .... वृद्ध माली धाराधार रोये और बोले जा रहा था। उसे बहुत अधिक पछतावा था। अब वह दुबारा यहाँ काम की बात किस मुँह से करे.......।

पर माता जी के हृदय में उसके प्रति रंच मात्र भी दुराव न था। वह पहले की तरह काम पर आने लगा। ताला कुंजी, घर द्वार, बाग-बगीचे सभी पर माली के पूर्ववत् अबाध अधिकार की मुहर......

अबकी बार माता जी काफी बीमार हो गईं उसके लिए चाय और खाना बनाने की ताब उनमें न रही.... कोई-कोई आकर उन्हें दवा पथ्य दे जाता. ... अशक्त माली दुखी था, फिर भी वह आता रहा, लाठी ठकठकाते हुए..."माता जी, बैठी हौ?" "हाँ माली...." उसने कहा "हम कहित है कै आप हमरे सामने न रहतिऊ तौ अच्छा होत.. मुला तुमका को देखी" माता जी मुस्कुरा दीं–उन्होंने सोचा–"अशक्त होकर भी माता जी की ऐसी चिन्ता" इस अपनेपन को कौन भूल सकता है..." दो दिन फिर माली नहीं आया।

तीसरे दिन खबर मिली–'माली नहीं रहा।' उम्रदराज, रोगग्रस्त संरक्षक नहीं रहा था–माता जी अवसन्न रह गईं..... उनकी बन्द आँखों के सामने अभी माली मानो गेट खोलकर धीरे-धीरे लाठी ठकठकाता हुआ आ रहा था........

माशा की मनहूस तकिया

–गेलीना लेबेदेवा

माँ ने अपनी बिटिया माशा को बिस्तर पर लिटाकर उसे अच्छे से ढँक दिया, बत्ती बुझा दी और कमरे से चली गयी।

माशा थोड़ी देर लेटी रही पर सो ना सकी। उसे अपना बिस्तर बहुत ही सख्त और गर्म लगा। और ऊपर से उसका तकिया बहुत बड़ा और भारी था। माशा गुस्सा हो गई और उसने बड़बड़ाते हुए तकिए को धकेल दिया;

"ओह, भद्दे, सख्त, गोबर-गणेश।"

फिर उसने अपने कम्बल को लतियाना शुरू किया जब तक कि वह फर्श पर गिर नहीं गया।

"दूर हो जाओ मुझसे; तुम पुराने, भारी, खुरदुरे और बदसूरत हो!"

माशा बिस्तर से उतर गयी और अपने पैर पटकने लगी। "मुझे इस बिस्तर से नफरत है! और मैं सोना नहीं चाहती! सोना कितना उबाऊ है!"

उसने अपने पैरों में चप्पल पहना और कमरे के बाहर चली गयी। उसकी माँ का कमरा बहुत ही शान्त था। माशा कुछ सुनने के लिए थोड़ी देर ठहर गयी। फिर वह दरवाजे के बाहर गयी और ड्योढ़ी की सीढ़ियाँ उतरने लगी।

कितना मजा आता अगर सोना ना पड़े।

वह उछलकूद करते हुए सड़क पर चलने लगी। ट्वाक्या कुत्ते ने कुत्ते-घर से अपना सिर बाहर निकाला और गुर्राया, "गुर्र्रर्र! कौन है वहाँ?"

"मैं हूँ, माशा!"

"तुम सोई क्यों नहीं? बहुत देर हो चुकी है।"

"मैं अपने भयानक बिस्तर पर सोना नहीं चाहती। मैं उस पर पागल हो जाऊँगी। मैं अब उस पर कभी नहीं सोऊँगी!"

"तुम ठीक कह रही हो," ट्वाक्या ने कहा। "एक अच्छी नींद के लिए तुम्हें कुत्ते-घर से अच्छी कोई जगह नहीं मिलेगी। वहाँ तुम नर्म, सूखी घास पर लेटोगी और पल भर में सपनों की आश्चर्यजनक दुनिया में लहराने लगोगी। अन्दर आ जाओ!"

"ओह, कितना बढ़िया है!" माशा ने कहा।

"ट्वाक्या उसके लिए कमरा बनाने बाहर गया। माशा अपने घुटनों के बल रेंगती हुई उस घर में घुसी। उसने सपने में लहराने की कोशिश की लेकिन उसे किसी तरह आराम न मिल सका क्योंकि
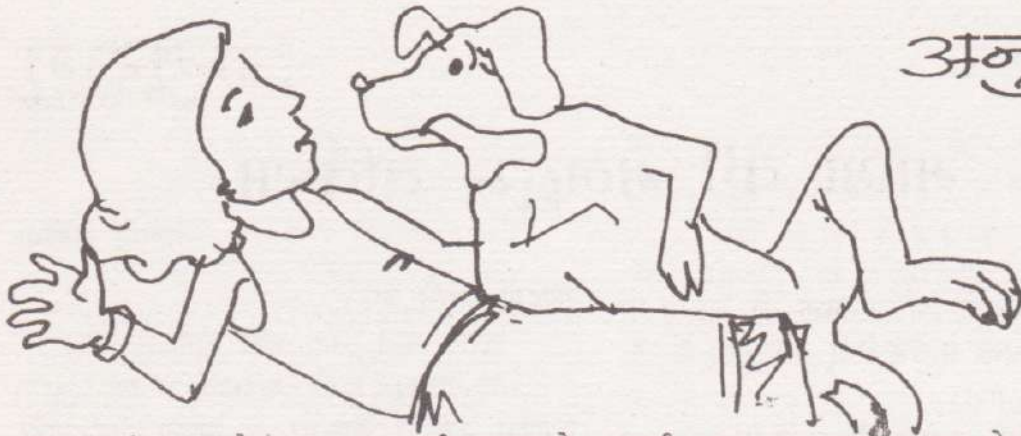
वह बहुत ही सख्त और खुरदुरा था। तभी ट्वाक्या ने अपना सिर अन्दर घुसेड़ा। उसके मुँह में हड्डी का एक टुकड़ा था।

"लो, यह तुम्हारे लिए! यह तुम्हारे सपने को और स्वादिष्ट बना देगा!"

"धन्यवाद," माशा ने कहा और रेंगती हुई बाहर आ गई। "मेरे ख्याल से तुम्हारा घर बहुत ही अच्छा है, लेकिन मुझे नहीं लगता मैं इसमें सो पाऊँगी!"

"क्या तुम बहुत मीनमेखी नहीं हो!" ट्वाक्या ने कटाक्ष करते हुए कहा।

माशा दौड़ते हुए मुर्गी दड़बे की ओर गयी यह देखने के लिए कि चित्तीदार मुर्गी ने उसके लिए चित्तीदार अण्डा दिया है कि नहीं? जिस क्षण उसने दरवाजा खोला, पीटर मुर्गे ने पंख फड़फड़ाये, अपने सिर को इधर-उधर घुमाया और बहुत ही सख्त आवाज में कहा-"तुम क्या चाहती हो?"

"मैं यह पूछने आयी हूँ कि क्या चित्तीदार मुर्गी ने मेरे लिए चित्तीदार अण्डा दिया है?"

"क्या तुम और धीरज नहीं रख सकती!" वह आगबबूला हो गया। "मुर्गियाँ सफेद अण्डे देती हैं। चित्तीदार अण्डे बहुत कम मिलते हैं। जाओ अपने बिस्तर पर!"

"मैं नहीं जा सकती!"

"क्यों नहीं?"

"मेरा बिस्तर मुझे पागल कर देगा। वह बहुत ही सख्त और ऊबड़-खाबड़ है।"

"मैं सहमत हूँ तुम्हारी बात से। रात में आराम के लिए मुर्गियों के दरबे से अच्छी कोई चीज़ नहीं हो सकती। हम साथ-साथ सटकर लेट जाएँगे और एक-दूसरे को गर्म करते रहेंगे।

काफी मशक्कत के बाद माशा मुर्गियों के दरबे पर चढ़ गयी और सबने उसे ढँक लिया। एक तरफ से मुर्गी उसे गरम कर रही थी और दूसरी तरफ से पीटर मुर्गा। वाकई उसे बहुत अच्छा लग रहा था। लेकिन जैसे ही माशा ने अपनी आँखें बन्द कीं, वह दरबे से कलैया खाते हुए गिर पड़ी। यह तो बहुत अच्छा हुआ कि नीचे कुछ घास पड़ी हुई थी और उसे ज्यादा चोट नहीं आई।

हड़बड़ाकर मुर्गी के दरबे से दौड़ते हुए वह अपने घर लौट गयी। लेकिन अन्दर नहीं गयी। वह ड्योढ़ी की सीढ़ियों पर बैठ गयी। एक चिड़िया उड़ती हुई आई और तपाक से उसकी गोद में चढ़ गई। वह बहुत ही अनोखी चिड़िया थी।

"हलो, कौन हो तुम?"

"मैं चमगादड़ हूँ। मैं दिन के समय तुम्हारी अटारी पर सोता हूँ और रात में उड़ता हूँ। तुम क्यों नहीं सो रही हो?"

"मेरा बिस्तर आरामदायक नहीं है।"

"ओह, यह तो बहुत बुरा हुआ। क्या मैं तुम्हारी मदद करूँ?"

"हाँ, जरूर!"

"चलो, मैं तुम्हें अटारी तक ले चलता हूँ, मेरे पीछे-पीछे आओ!"

चमगादड़ ने अपने पंख फड़फड़ाये और अटारी पर जाने के लिये खिड़की से निकल गया। उसके बाद माशा लकड़ी की सीढ़ियों के सहारे ऊपर चढ़ गयी।

"यह है मेरा बेडरूम!"

"लेकिन तुम्हारा बिस्तर कहाँ है?"

"यही तो है वह," चमगादड़ ने कहा और हँसने लगा। "मुझे बिस्तर की जरूरत नहीं है। मैं उड़कर कड़ी (लोहे की रॉड) के पास पहुँचता हूँ और अपने बड़े नाखूनों से एक मजबूत पकड़ बना लेता हूँ और वहाँ ऊपर से नीचे लटक जाता हूँ। ऊपर आओ ना!"

माशा को वह सब याद आने लगा कि किस तरह वह मुर्गी दरबे के अड्डे से धड़ाम से गिर पड़ी थी और उसका घुटना बुरी तरह जख्मी हो गया था।

"कैसे मैं कभी भी ऊपरी साइड से नीचे लटक कर सो सकूँगी?" उसने आश्चर्य से सोचा। "निश्चय ही मैं सिर के बल गिर पड़ूँगी। और यह अटारी भी एकदम पुरानी, जर्जर और भयानक है।"

"ठीक है?" चमगादड़ ने कहा।

माशा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह पहले ही हिलती हुई सीढ़ियों से धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। फिर वह उस गन्दे स्थान से निकलकर अहाते में गयी और तालाब की ओर जाने लगी। मेढ़कों ने डर से टरटराना बन्द कर दिया। छपाक-छपाक करते हुए वे पानी के अन्दर चले गए। बूढ़े बगुले ने डर से अपने पंख फड़फड़ाए, लेकिन जब उसने देखा कि वहाँ केवल एक छोटी शान्त लड़की है तो वह शान्त हो गया।

"क्यों तुम यहाँ चहलकदमी कर रही हो, मेरे मेढकों को डराने के लिए?"

"मुझे नींद नहीं आ रही है!"

"ही-ही-ही!" बगुला खाँसा, और तुम कह सकते हो कि उसे ठण्ड लगी थी।

"मैं सोचती थी कि केवल मेरे जैसे और बूढ़े ही रात में नहीं सो पाते। यह मुझे सर्दी-जुकाम इस नमी की वजह से है। लेकिन तुम्हें क्या परेशानी है?"

"कुछ नहीं," माशा ने बेचैनी से कहा। "हर रात बिस्तर पर जाना मुझे भयंकर उबाऊ लगता है।"

"हाँ, मैं यह जानता हूँ। तो ठीक है, तुम यहाँ सरकण्डे पर आ जाओ और हम दोनों दोस्त रहेंगे। मैं तुम्हें मेंढक की दावत दूँगा और तब तुम मेरे साथ दलदल में एक पैर पर खड़ी रह सकती हो। मैं तुम्हें अपने पंखों से ढँक लूँगा।"

"मुझे मेंढकों से डर लगता है," माशा ने बिसूरते हुए कहा। "और पानी से सब कुछ भीगा हुआ है, मैं तुम्हारे घर में नहीं सोना चाहती।"

"चिड़चिड़ी लड़की!" बगुले ने गुस्से से कहा। "चली जा यहाँ से! तेरे आँसुओं के बगैर भी यहाँ बहुत नमी है!"

माशा वापस अपने घर की ओर लौट गयी। "तालाब भयंकर रूप से ठण्डा था और वहाँ सोने के लिए बहुत गीला था।" उसने सोचा। "क्या अब अपने बिस्तर पर सोना बहुत अच्छा नहीं होगा, एक बढ़िया गरम कम्बल में। और वह तो बिल्कुल भी नहीं चुभता था। सच में, वह कम्बल बहुत ही प्यारा है और मेरा तकिया भी बहुत मुलायम है।"

माशा घर पहुँची और गर्वीले अन्दाज में अपने कमरे में गयी। उसने फर्श से कम्बल उठाया, तकिये को सहलाया और अपने गरम बिस्तर में घुस गयी।

फिर उसने जँभाई ली और कहा, "मुझे नहीं लगता कि पूरी दुनिया में मेरे बिस्तर से अच्छा किसी और का बिस्तर होगा!"

अनुवाद : **नमिता**

बच्चो, अनुराग सचमुच तुम्हारी पत्रिका बने, इसके लिए एक जरूरी बात यह भी है कि तुम अनुराग पढ़ने के बाद यह बताओ कि तुम्हें कौन सी चीज अच्छी लगी, इसमें और क्या-क्या होना चाहिए। तो बस झटपट पेन उठाओ और पोस्टकार्ड, अन्तर्देशीय या लिफाफे में हमें अपने सुन्दर छोटे-छोटे हाथों से लिख भेजो जिसे देखकर हम खुशी से झूम उठें।

जानकारी

बाघ
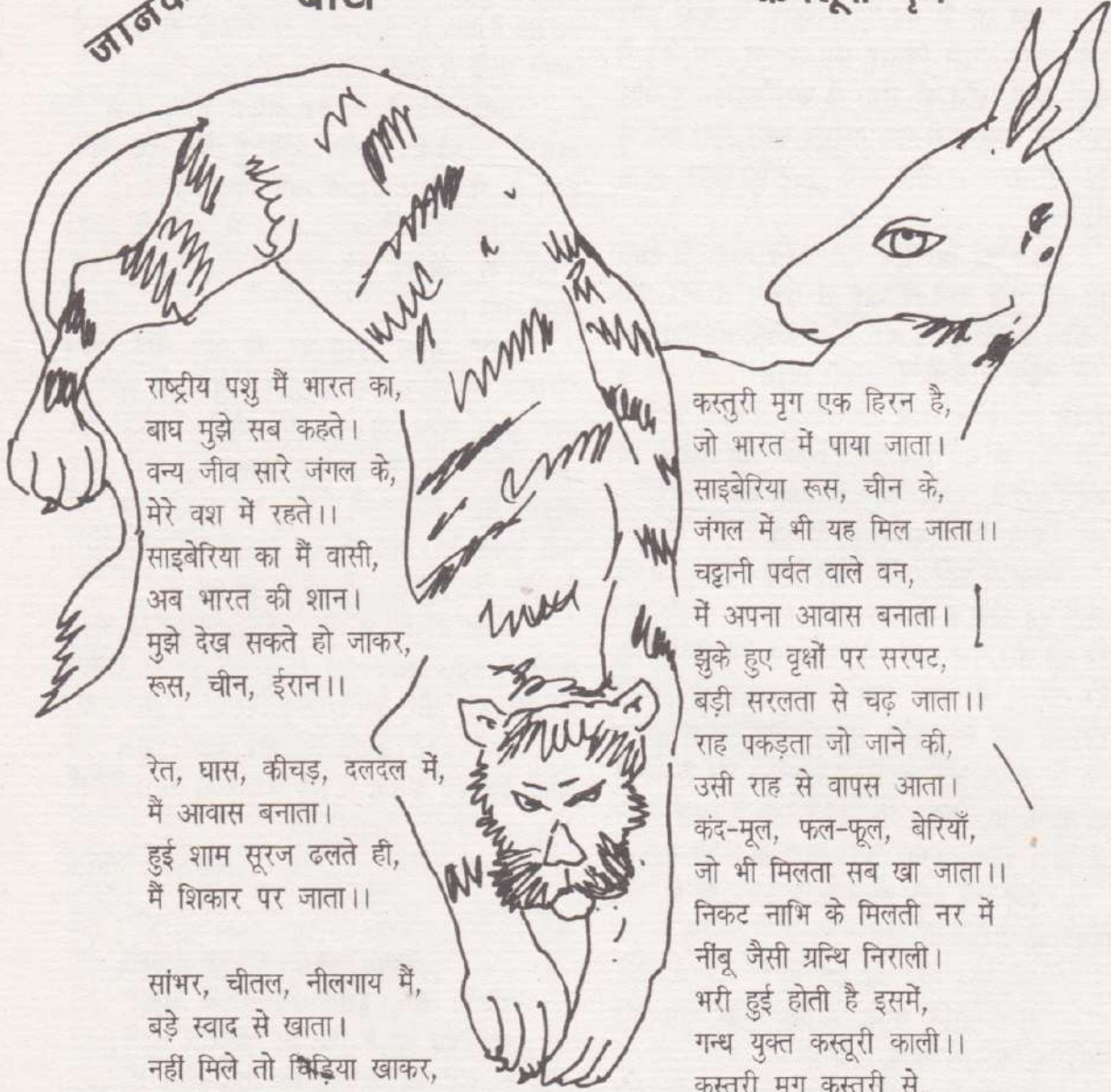
राष्ट्रीय पशु मैं भारत का,
बाघ मुझे सब कहते।
वन्य जीव सारे जंगल के,
मेरे वश में रहते।।
साइबेरिया का मैं वासी,
अब भारत की शान।
मुझे देख सकते हो जाकर,
रूस, चीन, ईरान।।

रेत, घास, कीचड़, दलदल में,
मैं आवास बनाता।
हुई शाम सूरज ढलते ही,
मैं शिकार पर जाता।।

सांभर, चीतल, नीलगाय मैं,
बड़े स्वाद से खाता।
नहीं मिले तो चिड़िया खाकर,
अपनी भूख मिटाता।।

मेरी परमशक्ति के सम्मुख,
हाथी शीश झुकाता।
राह छोड़ कर हट जाते सब,
जब मैं आता-जाता।।

कस्तूरी मृग

कस्तुरी मृग एक हिरन है,
जो भारत में पाया जाता।
साइबेरिया रूस, चीन के,
जंगल में भी यह मिल जाता।।
चट्टानी पर्वत वाले वन,
में अपना आवास बनाता।
झुके हुए वृक्षों पर सरपट,
बड़ी सरलता से चढ़ जाता।।
राह पकड़ता जो जाने की,
उसी राह से वापस आता।
कंद-मूल, फल-फूल, बेरियाँ,
जो भी मिलता सब खा जाता।।
निकट नाभि के मिलती नर में
नींबू जैसी ग्रन्थि निराली।
भरी हुई होती है इसमें,
गन्ध युक्त कस्तूरी काली।।
कस्तूरी मृग कस्तूरी से,
मादक मधुर गन्ध फैलाता।
बच्चों इसी गन्ध के कारण,
कस्तूरी मृग मारा जाता।।

डॉ० परशुराम शुक्ल

अनुराग बाल कम्यून के बच्चों की कलम से

प्यारे दोस्तो,

अनुराग बाल पत्रिका के पिछले अंकों में तुमने 'अनुराग ट्रस्ट' के बारे में पढ़ा होगा। यह संस्था बच्चों के स्वस्थ सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विकास लिए बहुत से काम करती है। इन्हीं में से एक है अनुराग बाल कम्यून। यहाँ कई बच्चे एक साथ रहते हैं, पढ़ते हैं, नई-नई बातें सीखते हैं और एक स्वतंत्र माहौल में भविष्य के स्वतंत्र और जिम्मेदार नागरिक बनने की राह पर शुरुआती कदम रखते हैं। अभी गोरखपुर में चल रहे ऐसे कम्यून में रहने वाले बच्चों ने अपने कुछ मजेदार अनुभव लिखकर भेजे हैं। तुम लोग भी ऐसी चीजें लिखकर भेज सकते हो।

– सम्पादक

'वांका' कहानी की समीक्षा

वांका कहानी पढ़ने के बाद मुझे ऐसा लगा कि मैं तो चौदह साल की हूँ और वांका एक नौ साल का बच्चा। अगर मुझे कोई कुछ कह देता है या डांट देता है तो बुरा लग जाता है और उस नौ वर्ष के वांका को तो लोग मार-मार के काम कराते थे तो क्या उसको अच्छा लगता था? वो लोग उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार करते थे। अगर उनका बच्चा रोता था तो उस नौ वर्ष के वांका को उसे झुलाने के लिए कहते थे। वांका स्वयं भी एक छोटा-सा बच्चा ही था। यह उम्र उसकी खेलने-कूदने की थी, और नई-नई चीजें सीखने की। इतनी कम उम्र में उसके माता-पिता नहीं थे। उसके दादा-दादी ही एकमात्र सहारा थे, उन्होंने भी उसे अपने से दूर कर दिया था क्योंकि वे उसे खिलाते क्या? वह उनके पास रहता तो मर जाता, यह बात उसको नहीं पता था।

वांका के जो मालिक थे। वह एकदम निर्दयी थे, वो वांका के साथ जानवरों से भी बुरा व्यवहार करता था। उसे भरपेट खाना नहीं मिलता था। वह रात भर सो नहीं पाता था। आखिर क्यों? क्या उस समाज में गरीब लोगों और गरीब बच्चों को जीने का कोई अधिकार नहीं था। सिर्फ हाई-फाई लोगों को ही जीने का अधिकार है। यह तो रूस की सच घटना है, और आजकल इस देश में भी यही सब हो रहा है। जिस देश को लोग सोने की चिड़िया कहा करते थे। उसी देश में लोग अपने बच्चों को पैदा होते ही मार डालते हैं खुद भी जहर खाकर मर जाते हैं। देश की आज यह हालत हो गई है। यहाँ पर भी छोटे-छोटे बच्चे होटलों में काम करते हैं। एक बार मैं जनचेतना पुस्तक प्रदर्शनी में गई थी। मेरे साथ सचिन और दीक्षा भी थे। वहाँ पर अरुण भइया ने कहा कि तुम लोग कुछ समय के लिए पार्क में घूमने के लिए चले जाओ। हम लोग कुछ देर इधर-उधर घूम रहे थे। तभी हमारी नजर अपने जैसे कुछ बच्चों पर पड़ी, उसमें तीन साल से पन्द्रह साल तक के बच्चे थे, उसमें एक तीन साल की छोटी-सी लड़की थी, सभी बच्चों ने मिलकर आपस में कुछ बात की और पास की दुकान पर खड़े एक आदमी के पास भेजा, वहाँ पर एक औरत भी थी वह छोटी लड़की दौड़ते-दौड़ते गई और औरत के पैर में गिर पड़ी और कहने लगी भगवान के नाम पर कुछ दे दो बाबू, सुबह से कुछ नहीं खाया है। कुछ दे दो, वह बहुत देर तक उसके पैर में पड़ी रही वह पैर छोड़ नहीं रही थीं। तब उस आदमी ने कुछ पैसे निकालकर दे दिया, वह पैसे लेकर चली गई। मेरे दिमाग में उस लड़की का चित्र बैठ गया है। वह छोटी-सी लड़की ठण्ड में उसके शरीर में सिर्फ एक फ्राक थी, वो भी फटी, उसका शरीर काँप रहा था और वह उस औरत के पैर में पड़ी हुई थी।

नन्दिता
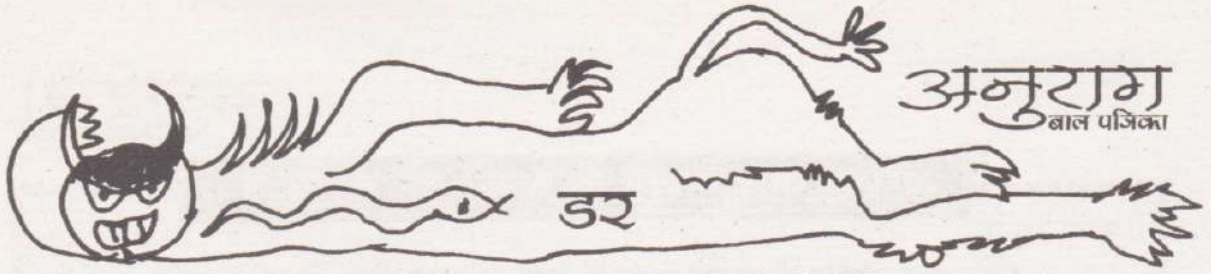
जब मैं अपने गाँव में रहती थी यह घटना उसी समय की है। मैं और छोटे भाई-बहन सभी साथ रहते थे। सभी लोग काम करने के लिए खेत चले गये थे। उस समय हम लोग अन्धविश्वास पर विश्वास करते थे। बहुत अधिक सुन रखा था कि इस पेड़ पर चुड़ैल रहती है यहाँ मत जाना, नहीं तो चुड़ैल तुमको खा जायेगी, मैं अपनी दोस्तों के साथ घूमने के लिए हमेशा बाहर जाया करती थी। वो मुझे घुमाती और चोर, डाकू, भूत, चुड़ैल आदि की कहानियाँ सुनाया करती थीं। मैंने सुना बहुत अधिक था, लेकिन देखा क़भी न था। मेरा मन भी करता था कि देखूँ आखिर चुड़ैल होती कैसी है। देखने की इच्छा के साथ डर भी बहुत लगता था कि कहीं चुड़ैल सामने न आ जाएँ, गाँव में सभी लोग भूत से डरते थे। और बताते थे कि चुड़ैल के पैर उल्टे होते हैं और उसके बाल बहुत लम्बे होते हैं। चुड़ैल सफेद कपड़े पहनती है। गाँव में एक लड़का है जिसका दिमागी सन्तुलन ठीक नहीं है। उसको कभी-कभी दौड़ा पड़ता है, और वो सबको गाली देता है और पत्थर से मारता है। किसी को कुछ भी कह देता था। गाँव के लोग कहते कि इसे भूत चढ़ गया है। किसी बाबा के पास ले जाओ इसे ताबीज बाँधो झाड़-फूँक कराओ। इसी तरह की घटनाएँ सुनती रहती थी। और मैं भी भूत को मानती और सोचती कि भूत होता तो है, लेकिन रहता कहाँ है। भूत रात को बारह बजे आते हैं और दो बजे चले जाते हैं। भूतों के पास बहुत-सी शक्तियाँ होती हैं। वो किसी को भी खा सकता है। इसी तरह की घटनाएँ सुनती रहती थी। ये सब सुनते-सुनते दिमाग में एक डर-सा बैठ गया था, कोई अनजान व्यक्ति आता था तो लगता था कि भूत आदमी का रूप धारण करके आया है। एक बार ऐसा हुआ, सभी बच्चे घर में थे और सभी बड़े लोग बाहर चले गये थे। हम लोगों के साथ हमारी बूढ़ी दादी माँ थी। हम सभी लोग घर के अन्दर खेल रहे थे। तभी एक औरत अपने छोटे से बच्चे के साथ भीख माँगने आयी, वह एकदम फटे-गन्दे कपड़े पहने हुई थी। उसको देखकर ऐसा लग रहा था कि न जाने कब से नहायी नहीं है उसको देखकर पहले तो बहुत दुःख हुआ। वह क्या बोल रही थी, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तो हम सभी लोग हँसने लगे कि आखिर ये क्या बोल रही है। वो बूढ़ी दादी माँ को बुला रही थी लेकिन मैंने कह दिया कि वो घर पर नहीं हैं। हम लोगों के मन में फिर भूत वाली बात आ गई। डर के कारण हम लोग छत पर टोकरी लेकर गये और बोले कि अपना आँचल फैलाओ और उसी में ये गेहूँ ले लो, तो वो और तेज से चीखी और कुछ कहने लगी, उसकी भाषा तो समझ में नहीं आ रही थी, लेकिन उसका चेहरा देखकर और डर लग रहा था। वह ऊपर से गेहूँ नहीं ले रही थी। कह रही थी कि नीचे से आकर दो।

मैं किसी तरह हिम्मत करके नीचे आयी, और फिर वापस चली गई, देना तो मुझे ही पड़ता क्योंकि वहाँ पर सबसे बड़ी मैं थी, फिर मैंने हिम्मत की और नीचे आयी। डरते-डरते उसके पास गई और जल्दी से गेहूँ देकर वहाँ से भागी, उसने गेहूँ लिया और कुछ कहते हुए चली गयी। वह घटना आज भी मुझे याद है। लेकिन आज मैं जान गई हूँ कि इस संसार में भूत नाम की कोई चीज नहीं है यह सिर्फ लोगों का वहम है जो कि दिमाग में बैठा हुआ है।

–नन्दिता

फ्रिज जी की भूल

एक थे फ्रिज जी। दिनभर फ्री रहते थे। दिन-ब-दिन बूढ़े होते जा रहे थे, पहले बहुत अच्छी तरह अपना काम करते थे। लेकिन अब अच्छी तरह अपना काम नहीं कर पाते हैं। लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। बूढ़े होने के बावजूद भी हिम्मत हारना नहीं सीखा। उनकी दोस्ती अजीब लोगों के साथ होती थी। उन अजीब लोगों के नाम हैं खाने-पीने की चीजें और उनकी दोस्ती किसी के साथ नहीं होती है। इसी तरह एक दिन आदेश चाचा आए, और साथ में गाजर भी लाए। उन्होंने सोचा कि गाजर का हलवा बनाएं। गाजर भी यह बात सुनकर खुश हो गई कि मुझे सभी बड़े स्वाद से खायेंगे। उसी दिन शाम को चाचा ने हलवा बनाया। उसके दूसरे दिन उसमें खोया, बादाम, चिरौंजी सब कुछ पड़ा। हलवा बनकर तैयार हो गया। नाश्ते में अच्छे स्वाद के साथ खाया गया और हलवे की बड़ी तारीफ हुई। हलवा खुशी के मारे गदगद हो गया। उसको फ्रिज में रख दिया गया। फ्रिज का दिमाग उस समय कहीं और था। आस-पास क्या घटित हो रहा है उसको कुछ याद नहीं था।

उनके इस भूल जाने से वे गाजर के हलवे को अपने साथ नहीं ले पाये। जिससे उसका स्वाद बदल गया। हलवा भी सोच में पड़ गया कि मेरा स्वाद तो खराब हो गया। मुझे कोई पसन्द नहीं करेगा। हलवे को जितना हम लोग खा सकते थे उतना खा लिया। फिर भी बच गया। उसी समय चाचा भी आ गए उन्हें पता चला कि हलवे का स्वाद खराब हो गया। चाचा ने कहा–'इसको गर्म कर दो और इसमें थोड़ा दूध डाल दो।' फिर हलवे को खाने पर उसका स्वाद ठीक लगने लगा। हलवा भी खुश हो उठा। फ्रिज जी को यह बात पता चली कि मेरी वजह से हलवा खराब हो गया था। उनको अपनी भूल पर गुस्सा आ रहा था। उन्होंने अपने बारे में बहुत सोचा। अब उनका दिमाग ठीक रहता है और ध्यान रखते हैं। साथ ही खुश भी रहते हैं।

• स्मृति

झगड़ा

एक थी वर्षिता एक थी हर्षिता। दोनों बहनें थीं उन दोनों में रोज लड़ाई होती थी। उनकी मम्मी दोनों से परेशान थीं। मम्मी उनको अक्सर समझाया करती थीं कि लड़ाई मत करो। कई बार तो उन्होंने दोनों को थप्पड़ भी मार दिया, लेकिन कोई असर नहीं हुआ। आखिर जब वो हद से ज्यादा तंग आ गईं तो पापा के पास गईं कहने लगी मैं तो तंग आ गई हूँ इन दोनों से, अब तुम ही कुछ करो। आखिर हुआ क्या पापा ने कहा–फिर मम्मी ने उनको सब कुछ बताया जब पापा इसका कोई हल नहीं निकाल पाए तो कहने लगे बच्चों को तो तुमने बिगाड़ा है तुम जानो तुम्हारा काम जाने। फिर मम्मी भी गुस्से में पापा से लड़ने लगी पापा कहें पहले अपना झगड़ा सुलझाओ फिर बच्चों का सुलझाना, फिर मम्मी भी गुस्से में अंट-संट बोलने लगी और फिर झगड़ा होने लगा।

अब न जाने क्या होगा बच्चों का झगड़ा सुलझेगा या मम्मी-पापा का।

• दीक्षा

गिनती की कविता

देखो बच्चो धरती एक,
काम सभी तुम करना नेक।
सूरज चाँद भाई दो,
छोड़ो अभी बुराई को।
आती जाती ऋतुएं तीन,
चलो घूमके आएँ चीन।
दिशाएं गिनो, होती चार,
सदा रखो ऊँचे विचार।
महाभारत के पांडव पाँच,
नहीं साँच को आई आँच।

–हर प्रसाद 'रोशन'

तितली

एक तितली नन्ही सी
उड़ रही थी गगन में,
पंख थे उसके चटख गुलाबी
करें अटखेलियाँ नभ में।

उस तितली का जन्म हुआ
था अभी एक कोकून में
जन्म लेते ही उसके मन में
उठा यह प्रश्न अनायास ही
कि यह दुनिया कितनी सुन्दर
देखूँ इसे जरा मैं भी।

निकलकर अपने घोंसले से बाहर
देखा उसने इस मनोहारी जगत को
देखकर पेड़-पौधों और पंक्षियों को
सोचने लगी वह उड़नपरी
मैं कितनी भाग्यशाली हूँ
जो जन्म लिया मैंने इस जगत में।

–विप्लव

गतिविधि

बेहतर किताबों से गुजरकर हम बेहतर इन्सान बनेंगे

गत १३ फरवरी, महाकवि 'निराला' की जयन्ती के अवसर पर गोरखपुर के, कल्याणपुर मोहल्ले में 'अनुराग बाल पुस्तकालय' का उद्घाटन दो वर्षीय मुजाहिद द्वारा किया गया। यह पुस्तकालय बच्चों द्वारा स्थापित व संचालित था। जाहिर है नन्हें मुजाहिद से बेहतर कोई और उद्घाटनकर्त्ता नहीं हो सकता था और सबसे बढ़कर सभी बच्चे इस फैसले पर एकमत थे। इस अवसर पर 'अनुराग बाल कम्यून' के बच्चों ने स्वरचित कहानियों और कविताओं का पाठ किया।

नन्दिता ने 'अगर जिन्दगी जीनी है' कविता को पढ़ते हुए जिन्दगी जीने का असली मतलब बताया, नवीन ने 'बुद्धिजीवी' कविता में बातबहादुरों की असंपृक्तता की खिल्ली उड़ायी। समीर ने जहाँ बिल्ली के कारनामें को 'बिल्ली की बहादुरी' पढ़कर बताया वहीं उसकी चालाकी को 'हाय बिल्ली' लघुकथा के जरिये रखा। बोझिल पढ़ाई से तंग दीक्षा ने 'पढ़ाई-पढ़ाई' में अपनी मुसीबत बतायी और 'शरारती कुत्ता' में कुत्ते की डण्डे से खबर ली। स्मृति ने 'नल महोदय' और 'फ्रिज जी' कहानियों में हैण्डपाइप और फ्रिज की ऐंठ और ग्लानि की कथा सुनायी तथा सचिन ने 'कम्प्यूटर की खोज' कहानी पढ़कर लोगों को गुदगुदाया। श्रुति ने भी 'प्रोफेसर दीमक किर्र-किर्र' कहानी में दीमक साहब की एकाग्रता और पढ़ते हुए सब कुछ चट करते जाने के खतरे से पाठकों को सावधान किया।

इस मौके पर उपस्थित वरिष्ठ कथाकार मदन मोहन ने कहा कि बच्चों ने यहाँ जिन रचनाओं का पाठ किया है वह अपेक्षाओं से बढ़कर है। उनकी सर्जनात्मकता और मौलिक भावनाओं के साथ इनके परिवेश ने ऐसी रचनाओं को जन्म दिया है। इसी प्रसंग में उन्होंने 'अनुराग बाल पत्रिका' को बच्चों की प्रतिभा और रचनाशीलता को उद्घाटित करने वाला सही मंच बताया। प्रसिद्ध आलोचक कपिल देव ने कहा कि हमें अपनी बौद्धिकता के शिखर से उतरकर उन बच्चों से रूबरू होना है जो बिल्कुल निश्छल और मौलिक हैं। ऐसे दिनों में जब बच्चे आज सीधे बाजार के निशाने पर हैं और जो इनकी संवेदनाओं को लगातार कुन्द करता जा रहा है 'अनुराग बाल पुस्तकालय' बाजार की इस साजिश को तोड़ने की एक पहल है। इस मौके पर डा. साधना गुप्ता और प्रोफेसर जे.पी.चतुर्वेदी ने भी अपने बचपन की कुछ बातें रखी।

'बेहतर किताबों से गुजरकर ही, हम बेहतर इन्सान बनेंगे', पुस्तकालय में लिखा यह सूत्रवाक्य बच्चों की मनोभावना को सच्चे अर्थों में व्यक्त कर रहा था। बड़े-बड़े कार्टून पोस्टर और बच्चों को लुभाने वाले विशाल डायनासोर के चित्र बच्चों के साथ-साथ इस अवसर पर उपस्थित सभी बड़ों को भी आकर्षित कर रहे थे। पुस्तकालय में देशी-विदेशी अनेक लेखकों की बाल पुस्तकें थी।

पुस्तकालय के स्थापना व उद्घाटन के कार्यक्रम में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि 'अनुराग बाल कम्यून' के बच्चे पुस्तकें खरीदने और इस कार्यक्रम को अंजाम देने के लिए टीम बनाकर घर-घर गये। उन्होंने मोहल्ले में बाल पुस्तकालय की स्थापना के महत्व को बताते हुए आर्थिक सहयोग जुटाया।

कार्यक्रम के अन्त में चार्ली चैपलिन की फिल्म 'गोल्डरश' दिखायी गयी, जिसे बच्चों के साथ-साथ बड़ों की भी खूब सराहना मिल रही थी। यह फिल्म शो के बीच-बीच में गूंजती ठहाकों की आवाज कहती थी।

होलिका दहन

'अनुराग बाल कम्यून' के पहल पर मोहल्ला कल्याणपुर (गोरखपुर) के बच्चों ने इस बार बिल्कुल अनोखे और अलग ढंग से होली मनायी। बच्चों ने सर्वसम्मति से यह फैसला लिया कि होली की पूर्वसंध्या पर परम्परागत और औपचारिक ढंग से होलिका दहन को सामाजिक बुराइयों के पुतला-दहन में बदल दिया जाये और साथ ही पुतला-दहन के पहले बच्चों की जुलूस की शक्ल में एक झांकी भी निकाली जाये। इस फैसले को अमली रूप देने के लिए होली के चार दिन पहले से ही संस्कृति कुटीर (जहाँ अनुराग बाल कम्यून के बच्चे सामूहिक रूप से रहते हैं) में बच्चों का जमघट लगने लगा। पहले आठ, फिर दस, फिर पन्द्रह और यह संख्या बढ़ती गयी और कुल पच्चीस बच्चे इस कार्यक्रम की तैयारी में जुट गये, पूरे उत्साह और बचपन की बेफिक्र मस्ती के साथ। उदयमान चाचा से पुतला बनाने के लिए पुआल की फरमाईश की गई। बाल कम्यून का समीर सुतली ले आया। रोहित अपने घर से लकड़ी के बड़े-छोटे टुकड़े ले आया। इस प्रकार बड़े जोर-शोर से 'बुराइयों का पुतला बनने लगा। सभी इसे बनाने में अपना हाथ आजमाना चाहते थे लेकिन अन्त में थोड़ी मदद अरुण भइया और उदयमान चाचा की लेनी पड़ी। फिर बारी आयी मुखौटा बनाने की। इस काम को कम्यून की श्रुति और नन्दिता ने अंजाम दिया। पुतला खड़ा रह सके इसके लिए एक टेक भी लगायी गयी। फिर बच्चों ने बारी-बारी से उन सामाजिक बुराइयों का नाम सुझाना शुरू किया, जिसकी पट्टी वह पुतले पर लगाना चाहते थे। सबसे पहले प्रियंका ने सुझाया 'आपसी भेदभाव' फिर तो बच्चों में होड़-सी लग गयी, अंकुर ने कहा 'नशा खोरी', अंकिता ने कहा 'चुगल खोरी' समीर ने कहा 'ढोंग पाण्खड' तो नवीन ने सुझाया 'अश्लीलता' शिवांगी ने 'पारिवारिक मार-पीट' को सामाजिक बुराई के रूप में देखा तो अमित ने 'अन्धविश्वास' को। फिर इन सभी बुराइयों को कागज की अलग-अलग पट्टियों पर लिखा स्मृति ने और पुतले पर चिपकाया सचिन ने। अब बुराइयों का प्रतीक पुतला तैयार था जलाये जाने के लिए।

अगले दिन यानि होली की पूर्वसंध्या पर सामाजिक बुराइयों के प्रतीक-पुतले के साथ संस्कृति कुटीर के परिसर से बच्चों का जुलूस निकला जो कल्याणपुर से होते हुए जाफरा बाजार सब्जी मण्डी चौराहा, फिर बड़े काजीपुर, घोसीपुरवा होते हुए फिर से कल्याणपुर दहन-स्थल तक आया। जुलूस में बच्चे नारे लगा रहे थे। एक बच्चा कहता 'ढोंग-पाखण्ड' और बाकी एक साथ अपनी आवाज मिलाते 'मार भगाओ-मार भगाओ' इसी तरह 'अन्धविश्वास... दूर भगाओ-दूर भगाओ', 'नशा-खोरी.... मार भगाओ-मार भगाओ'..। फिर तो नन्हे-मुन्ने भी पूरे उत्साह में आ गये और तोतली जुबान में बड़े बच्चों का साथ देने लगे। जुलूस का संचालन अमित-नवीन और रोहित की टीम के जिम्मे था। बच्चों का यह अनुशासित, उल्लसित और कुछ महत्वपूर्ण कर गुजरने की सार्थकता से भरी टोली जिन सड़कों-गलियों से गुजरती, बड़ों को पहले आश्चर्य और फिर प्रशंसा के भाव से भर देती। 'बच्चे.... और ऐसा अनुशासन और वह भी बिना बड़ों की उपस्थिति के', 'ऐसा सामाजिक सरोकार और ऐसी रचनात्मकता।'

दहन-स्थल पर पहुँचकर बच्चों ने एक गोल घेरे की शक्ल अख्तियार कर ली और बीच में पुतले का दहन करते हुए सामाजिक बुराइयों की कागज की पट्टी को एक-एक कर आग में झोंकने लगे। हर पट्टी के आग में पड़ते ही बच्चे एक स्वर में चिल्लाते 'स्वाहा'। इस तरह एक-एक करके सभी सामाजिक बुराइयों का उन्होंने स्वाहा कर दिया। और यूँ ही घिसे-पिटे ढंग से मनाये जाने वाले उत्सव को एक नया संदर्भ और सामाजिक सरोकार दिया।

अगले दिन बच्चे संस्कृति कुटीर के परिसर में रंग और पिचकारी के साथ इकट्ठे हुए और खूब हुड़दंग मचायी। एक-दूसरे को रंगों से सराबोर किया, रंग खत्म हो जाने पर पानी से काम चलाया गया। और यह भी सच्चे अर्थों में अलगाव को भेदता सामूहिक रूप से मनाया गया एक सामाजिक उत्सव।

भूत
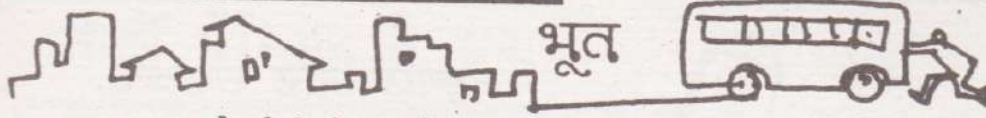
एक बार एक देहाती किसी काम से शहर आया। जब उसने अपना काम कर लिया तो अपने गाँव जाने वाली बस का इंतजार करने लगा। इंतजार करते-करते उसे नींद आ गई और वह सो गया। जब वह उठा तो शाम हो चुकी थी और उसकी बस जा चुकी थी। वह परेशान हुआ और घर जाने के बारे में सोचता रहा। उसके सामने से कई वाहन गए परन्तु उसे दुर्भाग्यवश कोई स्थान नहीं मिला। उसके अनेक कोशिश करने पर भी उसे असफलता ही मिली। उसने सोचा कि अब जो भी वाहन आएगा वह उस पर सवार हो जाएगा। थोड़ी देर बाद धीमी गति से आती हुई एक गाड़ी दिखाई दी। वह तुरन्त उसमें सवार हो गया। परन्तु यह क्या?.... उस गाड़ी को कोई भी नहीं चला रहा था उसने सोचा शायद भूत है। और अगर अब मैं नीचे उतरूँगा तो भूत मुझे पकड़ लेगा और मैं मारा जाऊँगा। आगे एक मोड़ आया तब उसने सोचा कि देखूँ यह गाड़ी कैसे मुड़ती है। और तभी एक हाथ खिड़की से अन्दर आया और स्टेयरिंग घुमा दिया। वह और ज्यादा भयभीत हो गया। उसने आगे सोचा कि अगर कोई आदमी अन्दर बैठने के लिए आएगा उसे मैं बता दूँगा कि गाड़ी में भूत है। तभी गाड़ी रुकी। उसने सोचा भूत ने मेरी बात सुन ली। वह बाहर निकला उसे एक आदमी मिला जो पसीने से तर-ब-तर था। उसने उस दूसरे आदमी को सब बता दिया कि इस गाड़ी में मैं बैठा था और तुम इसमें मत बैठना क्योंकि इसमें भूत है। तभी दूसरे आदमी ने उसको एक चांटा लगाया और बोला "मैं इतनी देर से गाड़ी को धक्का मार रहा था और तुम आराम से अन्दर बैठे थे।
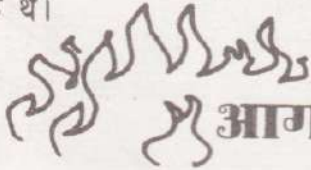
सूर्य, कक्षा-७

आग में मेरी पहली छलांग

यह घटना तब की है जब मैं अपने गाँव में रहता था।

एक बार की बात है मैं और मेरे कई दोस्त एक जगह खेल रहे थे। मैं इन सभी बच्चों में सबसे बड़ा था मैं सबसे शरारती भी था। खेलते-खेलते मेरी नजर एक राख से बने ढेर पर पड़ी (कुछ दिनों पहले वहाँ पर कुछ भारी सामान पड़ा था)

मैंने सभी बच्चों से कहा 'चलो हम लोग राख को उड़ाये और धूम मचाये।' बच्चों ने कहा कि 'ना बाबा ना। हम तो नहीं जाएगे क्या पता उसमें आग हो तो हम लोग तो जल जाऐंगे' मैंने सभी बच्चों को डांटा 'चुप रहो, डरपोक कहीं के, तुम लोगों को जाकर दिखाता हूँ' मैं राख की तरफ चल दिया। मैं दो कदम चलता और पीछे मुड़कर बच्चों की तरफ देखता। बच्चे कह रहे थे कि डर रहा है मुझे ऐसा लग रहा था कि जैसे आस-पास की सभी चीजें मुझसे यही कह रही हों कि 'डर रहा है'।

मैं राख के करीब पहुँच चुका था। मैंने देखा कि राख मुझे डांट रही है वह कह रही है 'चल भाग यहाँ से, खुद तो जलेगा ही दूसरे बच्चों को भी जलायेगा।' मैं राख पर बरसा 'चुप रहो, ज्यादा बोली तो अभी ऐसा उड़ाऊँगा कि खोजने से भी नहीं मिलोगी' मैंने राख में जैसे ही पैर रखा, यों जोर से चिल्लाया और राख के पास ही गिर कर बेहोश हो गया। मेरी आँख खुली तो देखा डॉक्टर व पापा मेरे पास खड़े हैं। फिर मैंने अपने पैर को देखा तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे किसी ने मेरे पैर को बिल्कुल सफेद फुटबाल में घुसा दिया हो। मैं बिस्तर पर कई दिन तक पड़ा रहा। फिर मैंने निश्चय कर लिया कि आगे से आग में नहीं कूदूँगा। यह थी आग में मेरी पहली छलांग।

विजय कुमार

कविता

कविता वहीं हम लिखेंगे
जिसमें कुछ मजाक हो,
कविता वहीं हम लिखेंगे
जिसमें चटपटी बात हो,
कविता वहीं हम लिखेंगे
जिसमें थोड़ी गम्भीरता भी हो,
लेकिन ये भी लिखने से क्या फायदा
जब आदमी ही ऐसा न हो।

दीक्षा
अनुराग बाल कम्यून

मंहगाई और सरकार

इतनी है मंहगाई
कुछ नहीं है कमाई
दस रुपये किलो आटा
इस सरकार को शर्म नहीं आता
आज भी है हम भूखे-नंगे
है जुल्म और मंहगाई
जब हम अपने हक पर आए
उनके सगे सिपाही आए
वह तो हमपे डण्डे बरसाए
ऐसी है सरकार ये भइया
ऐसी है सरकार
अब न रहेंगे भूखे-नंगे हम
बदल दो यह सरकार रे भइया।

राकेश, कक्षा ७, अनुराग बाल कम्यून,
गोरखपुर

आज़ाद तोता

किसी शहर में एक राजा रहता था। उस राजा का परिवार बहुत छोटा था। उस राजा को तोता पालने का बहुत शौक था। उसने बाजार से एक तोता खरीदा। वह तोता बहुत समझदार था। तोता सब कुछ बोल लेता था। जब सवेरा होता तो वह राजा को 'राजा' कहकर जगा देता। राजा तोते की बातें सुनकर बहुत खुश होता और तोते को हर रोज कुछ-न-कुछ खाने को देता। राजा को तोता पाले हुए बहुत दिन हो चुके थे। अब राजा तोता पर ध्यान नहीं देता था। तोता कभी भूखा तो कभी प्यासा रहता। तोता बेचारा पिंजरे में कैद रहता, समझो कि जैसे आदमी जेल में रहता है। बिल्कुल वैसे ही तोता रहता था।

तोता बहुत नाराज रहता था। एक दिन की बात है आकाश में एक तोता उड़ रहा था। जिसके चेहरे पर बहुत खुशी थी। वह चहचहाते हुये उड़ गया। उस तोते को देखकर पिंजरे में कैद तोते को बहुत दुःख हुआ। उसने मन ही मन सोचा काश मैं भी आकाश में होता और उस तोते की तरह उड़ता तो कितना अच्छा होता। पिंजरे में कैद तोते ने भागने की कोशिश की लेकिन नाकाम रहा। एक दिन बन्दी तोते को राजा ने कुछ खाने को दिया और पिंजरे की खिड़की लगाना भूल गया। इतने में तोता पिंजरे से भाग निकला और आकाश में जा पहुँचा, जहाँ वह जाना चाहता था। आकाश में जाकर उसे बहुत खुशी हुई। वह इतना खुश था कि जितना खुश कभी हुआ ही न था और वह इधर-उधर घूमने लगा तथा आजादी से रहने लगा।

राकेश, कक्षा ७, अनुराग बाल कम्यून, गोरखपुर